

सीता मौसी
(दो लघु उपन्यास)

सीता मैरी

(दो लघु उपन्यास)

रमणिका गुप्ता

ज्योतिलोक प्रकाशन

दिल्ली-110033

ISBN : 81-903785-4-6

© रमणिका फाउंडेशन

प्रकाशक

ज्योतिलोक प्रकाशन

21, टैगोर मार्ग, केवल पार्क,
आजादपुर, दिल्ली-110033

मूल्य : 225.00

संस्करण : 2012

आवरण : उमेश शर्मा

लेजर कम्पोजिंग : उमेश लेज़र प्रिंटर्स, दिल्ली

मुद्रक : रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली

‘सीता’-‘मौसी’ एक साथ क्यों

मेरे दो उपन्यास ‘सीता’ और ‘मौसी’ क्रमशः सन् 1996-1995 में प्रकाशित हुए थे। आदिवासियों की संस्कृति काफी हद तक बहुसंख्यक हिन्दू समाज की विकृतियों का शिकार हो चुकी थी और यह प्रक्रिया सतत् जारी थी। आदिवासी समाज मजबूरन या जबरन खेतों, खदानों में मजदूर बन कर या बना कर आ रहा था या लाया जा रहा था। सरकार तथा सूदखोरों व दिकुओं और बाहरी लोगों द्वारा उनकी जमीनों और जंगलों का उनसे छीना या हड़पना जारी था। आदिवासी स्त्री-देह वस्तु में परिवर्तित करने की होड़ मची थी।

अपनी अस्मिता बचाने हेतु स्त्रियां विशेषकर आदिवासी स्त्रियां जोखिम पर जोखिम उठा कर जूझ रही थीं कहीं व्यक्तिगत स्तर पर, तो कहीं सामूहिक स्तर पर या संगठन के माध्यम से तो कहीं अपनी नियति मान कर सह रही थीं। मूल्य बदल रहे थे। परिभाषाएं या तो अर्थ खो चुकी थीं या उनके अर्थ बदल दिए गए थे। एक मुक्त समाज, जिसे सदियों पहले सभ्यता बाहर कर दिया गया था, वर्जनाओं, निषेधों, वंचनाओं और दर्प-दंभ-अहम् से भरे विभेदकारी, विशिष्टतावादी समाज जो अब इनके जंगलों में घुस आया था की जीवनशैली के रूबरू खड़ा नहीं रह पा रहा था। आदिवासी समाज की मुक्तता का अर्थ स्वच्छन्दता लगाया जा रहा था और उनकी स्वतंत्रता को कुत्सित दृष्टि से देखा जा रहा था। उसके भोलेपन-मासूमियत, सीधेपन और अज्ञानता के कारण लोग मनमाने ढंग से लूट मचाए हुए थे। कोयला क्षेत्र में तरह-तरह के कई-कई प्रदेशों से जुटे माफिया के झुण्ड-के-झुण्ड अपनी पताका फहराकर अपना वर्चस्व जमाने के लिए खूनी खेल खेल रहे थे। सूदखोर अपना लोटा, सोटा और

बही-खाता लेकर गांव-गांव, टोले-टोले फैल चुके थे। आर्थिक शोषण और शारीरिक हिंसा व हमलों को झेल कर भी आदिवासी समाज अपनी भाषा-संस्कृति और सम्मान के लिए एक प्रकार के गुरिल्ला युद्ध की शैली में अपने को बचाए रखने की कोशिश कर रहा था।

खदानें निजी हाथों में थीं फिर सरकारी हो गईं, लेकिन आदिवासी किसानों की स्थिति बद से बदतर होती गई। किसान से मजदूर बना जंगल और जमीन से बहिष्कृत कर दिया गया। आदिवासी एक तरफ जल-जंगल-जमीन की लड़ाई लड़ रहा था, तो दूसरी तरफ रोजगार पाने और रोजगार बचाने की। साथ-ही-साथ लड़ रहा था वह अधिकारों की बुनियादी लड़ाइयां। विस्थापन और पलायन से अभिशप्त आदिवासी समाज की पहचान पर खतरा मंडरा रहा था। उसमें आत्मसम्मान का बोध जग रहा था और वह संघर्ष के लिए लामबद्ध होने लगा था। इन लड़ाइयों में स्त्रियों की निर्णायक भूमिका थी। पुलिस का सामना वे आगे की कतार में खड़ी हो कर करती थीं।

‘मौसी’ ने जंगल से अपनी जंग शुरू की और खदानों के बीहड़ में धक्के खाकर फिर अपने गांव लौट आई। लौट आई वह अपने जंगल में जंगल, जो उजड़ चुका था, उस गांव में, जो मूल आदिवासियत गंवा कर जातियों का अखाड़ा बन रहा था। मौसी संघर्ष की भाषा सीख चुकी थी। उस माहौल में अट नहीं पा रही थी। वह अस्मिता को पहचान और जान चुकी थी। उसने अपनी स्वतंत्रता बरकरार रखने के लिए गांव भी छोड़ दिया और वह कमाने खटने के लिए शहर आ गई अपने भरोसे जीने के उपक्रम का संकल्प लेकर। बहुत से पुरुषों को हाथों में फिसलती चली गई थी मौसी। अब उसे पुरुष के भरोसे जीना स्वीकार नहीं था। उसे स्वीकार्य था पुरुष का साथी बन कर साथ लेना पति या खूटा बना कर नहीं।

सीता अपनी जंग शुरू करती है कोयला खदानों से। उस मिली-जुली बोली-भाषा वाली संस्कृति के बल पर वह अपनी पहचान बनाती है। किसान से कामगार बन चुकी सीता किसानों की लड़ाइयों का नेतृत्व भी एक अगुआ दस्ते की सदस्य के नाते करती है। धर्म व जाति को वह अपने आदिवासी समाज के नज़रिए से देखती है। वह अपनी जीवनशैली बरकरार रखती है और वैसे ही जीती है रहती है! वह डट कर पितृसत्ता और धर्म का मुकाबला करती है। आर्थिक स्तर पर भी वह मजदूरों के हकों के लिए संघर्ष करती है। राजनीतिक स्तर पर भी वह जागरूक हो चुकी है और संगठन पर अपनी पकड़

जमा चुकी है। हां राजनैतिक तिकड़मों से अनजान है वह। इस सब के बावजूद वह राम की सीता को पछाड़ कर एक नई सीता बन गई है, जो अपनी स्वतंत्रता की परिभाषा खुद गढ़ने में सक्षम होना चाहती है। वह गांव वापिस न लौटकर खदानों में ही एक कतार, एक श्रृंखला बनकर स्त्री की अस्मिता, मजदूरों के अधिकार और किसानों के हक की लड़ाई लड़ने का ही नहीं, उसे जीतने का भी सपना पालती है। जंगल हो या खदान, गांव हो या शहर, पटना की राजधानी हो या प्रदर्शनकारियों की भीड़ को ले जा रहे भारतीय रेल के डिब्बे, कहीं भी नहीं डरती वह। वह सभी जगह डट जाती है। संगठन और संघर्ष दोनों करना सीख गई है वह। भ्रष्टाचार क्या है इसकी समझ भी उसे आ गई है। वह सीधे हमला करती है भ्रष्ट प्रशासन पर!

दोनों उपन्यास आदिवासी समाज के दो पहलू हैं राजेन्द्र यादव जी के शब्दों में दोनों एक व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं या पूरक हैं।

इसीलिए हमने इन दोनों उपन्यासों को अलग-अलग नहीं बल्कि एक साथ प्रकाशित करने का निर्णय लिया है ताकि ये एक साथ पढ़े जा सकें और उस दौर के इतिहास को साहित्यिक संवेदना के दृष्टिकोण से पढ़ा, जाना और समझा जा सके। इन उपन्यासों में सामाजिक पक्ष, इतिहास की प्रमुख परिघटना है। दोनों उपन्यास इस नए संस्करण में आपके समक्ष प्रस्तुत हैं! आदिवासियों की छिन्न-भिन्न नष्ट होती संस्कृति के संघर्ष के इतिहास के वरक एक साथ पढ़ने पर जो चित्र या निष्कर्ष निकलेगा, संभवतः उससे आदिवासियों की या उनके प्रति संवेदनशील लोगों की वर्तमान या आने वाली पीढ़ी इस समतावादी, भाईचारावादी और आजादी प्रिय आदिम संस्कृति को बचाने के उपाय भी ढूंढ निकाले।

हो सकता है स्वतः ही कोई निष्कर्ष निःसृत हो जाए इन शब्दों की कतारों में आए संवादों से या प्रश्नों से।

इन उपन्यासों की दोनों नायिकाएं 'सीता' और 'मौसी' अभी मौजूद हैं एक खदान में, एक गांव में।

रमणिका गुप्ता

सीता

“त्याग और तपस्या की प्रतीक सीता जब रामायण के युग से निकलकर आज के संघर्षों में भूख से जूझती हुई जवान होती है तो वह सर्वहारा वर्ग के लिए आधुनिक रावणों से लड़ती है। आज की सीता जूझी है हर रिश्ते से, उमर के हर मोड़ पर। उसने मौत से छीना है जिन्दगी को। सीता अब अपने से बाहर खड़ी सीताओं के लिए लड़ने लगी है। सीता अब एक कतार है, एक श्रृंखला है, एक पांत है। पांत जो चुप थी आज तक, अब बोलने लगी है। पांत जो जड़ थी सदियों से, अब फुंकारने लगी है। आज की सीता अपने बदलाव की बाढ़ में गली-सड़ी मानसिकता को बहाए ले जा रही है, समुद्र के गर्त में दफनाने के लिए। वह इंतजार में है कि कल जो सूरज निकले, जो हवा बहे, वह उस जैसी सीताओं के हिस्से में भी आए जिससे वे वंचित रही हैं, सभ्यता के आने के बाद से। सीता ऐसी लपट है जो मनुष्यता के लिए उजाले बांटती है और दानवता को जलाकर राख करने में समर्थ है।”

महाश्वेता देवी
को
जिनकी रचनाओं ने मुझे
आदिवासियों-दलितों में
अपने अनुभवों को रूप देने के लिए
प्रेरित किया

सीता

सीता, प्यारी, रनिया और सरस्वतिया, चार बहनें सुमित्रा की चार बेटियाँ शुकरा करमाली की बेटों जैसी औलाद। चारों बेटियाँ अपने माँ, बाबा और चाचा के साथ राँची जिला के खूँटी गाँव से राजा की खदान केदला में खटने आईं। 1958 में। राजा साहब नई-नई खदानें, नई-नई पोखरियाँ खोल रहे थे। राजा साहब जिनका नाम पूरे छोटानागपुर में मशहूर था जिनका राज हजारीबाग-राँची-मांडर तक फैला था, जिनकी रानी अंग्रेजों के जाने के बाद से हर पाँच वर्ष में प्रजा को सिन्दूर-दान करने निकलती और अपने सुहाग और प्रजा के भाग के लिए वोट माँगती थी, जो जंगल के मालिक तो थे ही जनता का पेट पालते थे। आखिर जनता से तो कुछ नहीं वसूलती थी रानी। बेचारी एक कागज के टुकड़े पर, कभी साइकिल कभी शेर पर मुहर लगाने को ही तो कहती थी! वरना उसे क्या दुःख था! पूरे राज-पाट, जमीन-जंगल-आकाश, आग-पानी सभी तो राजा साहब के वश में है। जंगल की आग और बादल की गाज, दोनों पर उनका वश है। इसलिए हैलीकाप्टर में राजा साहब चलते तो नीचे जंगलों में, रास्तों पर, खेतों में आदिवासी प्रजा धरती पर लेटकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करती, फिर खड़े होकर हाथ माथे तक ले-जाकर जोर-जोर से 'जोहार-जोहार' कहते सब लोग। बच्चे माँ को खींचकर झोंपड़े से बाहर ले आते

‘राजा आया...राजा आया’, चिल्लाते ।

इन विश्वासों को पाल रही प्रजा इन मान्यताओं को सँजो रही जनता के, उसी राजा की धरती में कोयला निकला था । खटने के लिए बुलाया था । दलाल पूरी श्रद्धा से राजा को प्रणाम करते, हाथ आकाश की तरफ उठाकर आदिवासी मजदूरों को अपने साथ चलने के लिए कहते । “खेती का क्या भरोसा? वर्षा नहीं हुई ,तो भूखे मरने की नौबत आ जाएगी । खदान में तो नगद ‘टटका’ पैसा मिलेगा, ‘औरो’ (और भी) जमीन किन सकते हो गाँव में । अभी वक्त है चलो, नहीं तो दिक्कू (गैर आदिवासी) लोग काम हथिया लेगा । फिर खेती के समय घर आने की, खेती करने की तो छुट्टी मिलबे करेगी । अरे मन न माने तो घर के चल आना । कोई भाड़ा थोड़े लगना है अभी । खट के भाड़ा भी उतर जैँते !” वे कहते ।

स्वार्थ और पैसे की चमक-दमक दिखा और लालच देकर दलाल मजदूरों को पोट-पोटकर केदला कोलियरी में लाने लगे । अगल-बगल के ग्रामीण खदान में नहीं उतरे थे, इसलिए दूर-दराज से मजदूर लाने के लिए आदमी छोड़े गए थे । सीता के पिता को दंगल सरदार का रुतबा मिला । सरदार माने मजदूरों के दल का मुखिया, जिसे उसके दल के प्रत्येक मजदूर की कमाई में से रुपए में दस पैसा बिना खटे मिलता है । वह उनके लिए मालिक से औजार और खदान में बढ़िया काम का स्थान, भरपूर काम और वक्त पर विस्फोट कराने का ‘जुगाड़’ करेगा । काम भी देखेगा ताकि मजदूर खाली न बैठें । हालाँकि शुकरा का परिवार ही सीता और प्यारी के मरद को जोड़कर काफी संख्या में था लेकिन फिर भी उसने गाँव के और चार नौजवान जोड़ों को साथ ले लिया ताकि ‘मर-बिमारी बखत’, और ‘चोट-घाट बखत’ काम में हरजा न हो । इसी काम और कमाई पर शुकरा का कमीशन भी घटना-बढ़ना था ।

सबको 10 नम्बर पोखरी के ऊपर वाली पहाड़ी पर टिकाया गया । बाँस, रोला, खपड़ा ठेकेदार ने दिया । मजदूरों ने मिलके धौड़ा छान लिया, जो राँची धौड़ा कहलाने लगा (बाद में यह स्थान पक्का-सेंटर कहलाया) । पी. डी. अग्रवाल के ठेकेदार की पोखरी में काम मिला । सुरेन्द्र सिंह, द्वारिका बाबू,

निरंजन सिंह, पी.डी. के स्टाफ थे और यासीन मियाँ ठेकेदार का पैटी ठेकेदार और मुंशी दोनों का काम करता था। इन पोखरियों (खुली खदानों को पोखरी कहते हैं) में तिहरी व्यवस्था लागू थी। सारा परिवार खटने लगा। सरस्वतिया छोटी थी पर उन दिनों खदानों में कोई नियम-कानून नहीं था। कोई ऑफिसर खदान में कानून लागू करवाने या देखभाल करने के लिए नहीं आता था। खासकर राजा साहब की खदान में आने की हिम्मत या दम किसी सरकारी अफसर या यूनियन-नेता में न था। मजाल है कोई पूछताछ करने के लिए घुस सके खदान में! परेज बंगला से ही सब लौटा दिए जाते थे। माँ-बाप के साथ 12-13 वर्ष के बाल-मजदूरों को खटाना आम बात थी। रात को भी औरतें लोडिंग करती थीं मरदों के साथ। बगल में कुजू फील्ड में तो हेसागढ़ा कोलियरी में अंडरग्राउंड खदान तक में औरतें खटती थीं। लगभग चार सौ औरतें पर कोई टोकने वाला न था।

ऐसे ही पोखरी का काम बड़ा जोखिम-भरा होता है। फिर सुरक्षा-नियमों के अनुसार बेंच न रखे जाएँ, रास्ते न बनाए जाएँ या माटी-पत्थर-कोयला न कटया जाए अथवा ब्लास्टिंग न की जाए, तो हरदम जान का खतरा बना रहता है। बरसात के बाद अक्टूबर से अगली बरसात आने तक, खासकर मार्च-अप्रैल माह तक कमाने के सीजन में कोयला की नोचा-चोथी शुरू हो जाती है। बरसात-भर पत्थर कटता है। सीजन में ठेकेदारों को 'वर्टिकल कटिंग' (सीधी कटाई) शुरू कर कोयला निकालने की फिक्र होती है। कानूनन तो जितनी सीम की ऊँचाई हो उतना ही चौड़ा बेंच रखना होता है पर दो फिट से ज्यादा भला कोई ठेकेदार बेंच कैसे रखता? उसे मुनाफा कमाना है, मजदूरों की सुरक्षा नहीं करनी। मजदूर भी कमाने के चक्कर में अपनी सुरक्षा की अनदेखी करते। ऐसे उन्हें मालूम भी नहीं था कि नियम क्या है? खड़ी कटाई करने के कारण भी कभी-कभी खदानें धँस जाती थीं। मिट्टी हो तो भसक जाती थी। शुरू-शुरू में समझ न होने के कारण कितने ही मजदूर मिट्टी में दब गए थे पर कौन पूछता था! लाश भी नहीं निकालता था कोई। थाना-पुलिस तो राजा साहब की रखैल ही थे और ठेकेदारों की दासी था थाना। पुलिस के लिए तो ये खदानें

उनकी लक्ष्मी थीं। कोई मरता तो पैसा मिलता, फिर तहकीकात करने की जहमत क्यों उठाएँ? इसलिए चारों तरफ मची पैसे की लूट में मजदूर की जिन्दगी की क्या कीमत हो सकती है भला? हाँ, आपस में दारू पीकर मजदूर लड़ जाते, तो थाना के प्रिय-पात्र हो जाते थे क्योंकि दोनों पक्ष पैसा देते थे। सुलह होने पर भी थाना में पैसा भरना जरूरी था और केस लड़ने से तो चाँदी काटता था थाना। ठेकेदार ही अपनी तरफ से पैसा भरकर, उनकी मजदूरी से थाना-खर्च काट लेता था। बिन माँगे दिए गए कर्ज पर ठेकेदार को मनचाहा सूद तो मिलता ही था।

पाँव रखने-भर बेंचों पर पाँव धरते मजदूर, बिना प्रतिवाद किए कुओं की तरह खतरनाक ढंग से कोड़ी गई खदानों में जोखिम उठाकर खटते थे। भट्टों का धुआँ उनके धौड़ों के गिर्द रात-दिन फैला रहता था और वे धुआँ पीते थे। धूल से उड़े कोयले के कण उनके फेफड़ों में बैठ जाते थे। उस दिन चैता मुण्डा साँप काटने से मरा था, पोस्टमार्टम हुआ तो उसके फेफड़ों से कोयला निकला था!

बगल में ही एक बस्ती है सोनगढ़। वहाँ रेलवे-साइडिंग है, जहाँ से कोयला वैगनों में लोड होकर आता था। अगल-बगल पोड़ा कोयला (जलाकर बुझाया हुआ कोयला, जो चूल्हे में जलाया जा सकता है) बनाने के लिए बड़े-बड़े भट्टे लगते थे। काला-काला धुआँ हमेशा आकाश को छूने के लिए घिरनी-सा चक्कर काटकर उठता रहता था। उस रास्ते पर जाने से आँखें तो जलने लगती ही थीं पर गला भी फंसने लगता था। गाँव वालों और मजदूरों को आदत पड़ गई थी। उस गाँव में प्रायः फसल मारी जाती थी। गाँव वालों ने इन भट्टा लगाने वाले रेल तथा कोलियरी के प्रबन्धकों के खिलाफ काफी आन्दोलन किया। मैंने इसकी अगुआई की थी। वहाँ भी ग्रामीण मरते तो फेफड़ों में कोयला मिलता। सतत् आन्दोलन करने के बाद गाँव में तो भट्टा लगाना रुक गया था, पर कोलियरी में कैसे रुकता? यहाँ तो भट्टा मजदूरों की जीविका से जुड़ा था। भट्टा बन्द तो काम बन्द। जीना है तो जलना ही होगा। कोयले की धूल फाँकनी ही होगी। आँखों की रोशनी गँवानी ही होगी।

यह पेट का सवाल था। जरूरत का सवाल था। जरूरत? किसकी जरूरत? मजदूरों की जरूरत? उन्हें रोज़गार चाहिए ना! देश की जरूरत? उसे जनता के चूल्हों में जलाने के लिए कोयला चाहिए। इसलिए 'पोड़ा' बनाना है। पोड़ा बनाना है तो मजदूरों को कोयला फाँकना है, चूँकि ठेकेदार-मालिक-सरदार मजदूरों को अलग सुरक्षित स्थान पर रहने की सुविधा देकर अपना मुनाफा कम नहीं कर सकते थे। उनके झोंपड़े दूर होंगे तो वे बारह घंटे काम कैसे करेंगे? आने-जाने में ही समय बीत जाएगा। ऐसे पूरा का पूरा घाटा लग जाएगा। फिर थकान के कारण काम करने की क्षमता घटेगी। आखिर मजदूरों को भी पुसाई पड़े यह खयाल भी तो ठेकेदार को ही रखना पड़ता है, वरना पुसाई न पड़ने से मजदूर भाग जाएगा। सो मालिकों के पास मजदूरों के फायदे के लिए ही भट्टों के पास रहने का अच्छा-खासा तर्क था। इसलिए उन्होंने कह दिया था “खदान के अगल-बगल अपने छप्पर छानकर रहे, जिसे रहना है, कमाई करना है। जब माल (कोयला) मिल जाए तो भट्टा लगाए। पानी दूर है, तो भी लाए। भट्टा तो 'बुताना' (बुझाना) ही पड़ेगा ना। इसलिए बुताओ (बुझाओ)।”

वहाँ किसी यूनियन का संगठन नहीं था। उस क्षेत्र को लोग 'नो मैन्स लैंड' कहते थे। ठेकेदारों, लठैतों, रंगदारों, महाजनों का राज था। धनबाद का माफिया शब्द अभी वहाँ नहीं पहुँचा था। पर 16वीं शती के मध्यम युग जैसा सामन्ती परिवेश था। राजा साहब की खदानें थीं। राजाशाही चलती थी, भले कम्पनियों, ठेकेदारों, पहलवानों की मार्फत ही सही।

चैता भी बारह घंटा तक खटता था। भट्टा लगाने, तोपने (झांपने) का काम उसका दंगल मिलकर करता था। सो दिन-भर कोयला फाँकता था धुआँ पीता था और कमाई के लिए समय समेटता चलता था। एक क्षण भी नहीं गंवाता था। भोरे पाँच बजे मुँह-अँधेरे काम पर आना, भट्टा लगाकर चले जाना। दिन में झाँपना, रात में आ-आकर झाँपना और देखना। फिर तीन दिन बाद लड़-भिड़कर भट्टा बुताना (बुझाना)। क्यों? ड्यूटी का बँधा समय नहीं था क्या? क्या अपना भी कोई समय नहीं था उसका? समय तो था, समय था उन

दहकते कोयले के अंगारों का जो उसके पेट में भूख की लपटों को बुझाते थे।

सो वही चैता मरा। साँप काट गया था। रात को भट्टा 'बुताने' निकला था। सर्दी की रात, अँधेरी रात। चारों तरफ़ भट्टों से निकलती सफेद छोटी-छोटी साँप की जीभों-सी लपटें। लौट रहा था झॉपकर कि पाँव में काँटे-सा कुछ चुभा, बस पूरा शरीर लहर गया। करिया साँप था। ज़्यादा 'टैम' नहीं लिया जहर ने फैलने में और उसके होश गँवाने में। साँप को गुज़रते देख वह 'हदस' गया। दहशत से भरकर वह चिल्लाया। सीता का झोंपड़ा बगल में था "करिया डस गेलो रे सीता... बचावा, बचावा रे शुकरा!" पूरा राँची-धौड़ा जमा हो गया था। ओझा भी आया, मौलवी भी आया। पर विष नहीं उतरा। कभी का मर चुका था चैता। कोलियरी का अस्पताल तो कभी खुलता ही नहीं था। डॉक्टर था जो आता नहीं था। सो हजारीबाग ले गई पुलिस। वहाँ पर पोस्टमार्टम के बाद सभी ने देखी थी उसके फेफड़ों में, पेट की पोटली में कोयले की धूल। कोयला पाए जाने की खबर आग की तरह मुँहों-मुँह कोलफील्ड में फैल गई थी। तब से ग्रामीणों और मजदूरों में सुगबुगाहट पैदा हो गई। मिलकर आन्दोलन करने का मन बनाने लगे थे वे सब। केदला के राँची-धौड़े में मीटिंग भी हुई थी पर मन में अभी भी डर भरा था, खासकर मजदूरों के। कहीं ठेकेदार काम से हटा दे तो क्या होगा? यह अहम सवाल था। पिछले साल अकाल भी पड़ गया था। गाँव में खेत परती रह गए थे या फसल सूख गई थी। सरकार ने खिचड़ी और दर्रा बाँटने का काम शुरू किया था गाँवों में। इस साल भी वैसा हुआ तो काम न मिलने पर गाँव में भी गुज़र नहीं होगी।

“काम न मिलने पर यहाँ धूल भी फाँकने को न मिलेगी?” शुकरा ने सबको समझाया।

“कोई नेता-वेता या ऊनियन (यूनियन) वाला आता तो भले वह आगे रहता और हमनी सब पीछू रहते और लड़ाई लड़ते।” सुमित्रा ने टोकते हुए कहा।

“हजारीबाग में तो एक नेता जी आईन है सोनगढ़ा की लड़ाई, जहाँ का चैता रहा, ओहे नेता जी लड़ी रही। टाटा की घाटो कोलियरी में भी तो हाईस्कूल के बिल्डिन बना देत रहीं रातों-रात। जंगल में भी उन्हीं के कहे

पर जंगल सिपाहियन के खिलाफ आदिवासी जुट रहल है, तीर बीजर लै के। हमनी के भी इन ठेकेदारवन के जुल्म के खिलाफ उन्हीं के बुलाय के ले आयल चाही।” बुधराम, जो विलासपुर का आदिवासी मजदूर था, बोला।

राधे, घसिया, मियाँ बाई, बुधराम, कीरत, पटेल राम (विलासपुरिया), रामचन्द्र नोनिया और रामा चौधरी (क्रमशः गया और पलामू) और शुकरा तथा सुमित्रा कारमाली (राँची धौड़ा से) चुने गए। केदला के सरपंच जयराम महतो को मजदूरों को साथ लेकर, मुझे केदला में यूनियन बनाने के लिए निमन्त्रण देने हेतु जिम्मा सौंपा गया। सरपंच पैटी ठेकेदारी करता था। उसने परेज के ललित बाबू से रात को जाकर बात की और सब मामला फिट कर लिया। चुपचाप बिना ठेकेदारों को खबर लगे मुझसे बात करने का प्रोग्राम बन गया। ललित बाबू की राजा साहब के प्रबन्धन तथा पी. डी. अग्रवाल की कम्पनी से लेन-देन को लेकर कुछ खट-पट चल रही थी। इसलिए उन्होंने विभीषण की भूमिका निभाई। हजारीबाग आकर मुझसे बात की गई। सीधे कोलियरी ना जाकर पहले बगल वाले राहों गाँव में, जो चुटवा नाला पार करके था और जहाँ हर सोमवार को बाजार लगता था, मजदूर हाट करने जाते थे पहली मीटिंग करने का फैसला हुआ चूँकि उसमें खतरा कम था। कोलियरी में तो ठेकेदारों के लठैत मुझ पर वार कर सकते थे।

कीरत राम ने केदला चौक का अपना धौड़ा यूनियन के ऑफिस के लिए देने का वायदा किया; वह उसी के पीछे दूसरा झोंपड़ा बना लेगा। किसी को चुपचाप एकाएक मेरी राहों की मीटिंग के बाद ऑफिस में आकर झंडा फहराना था। गाँव में भी पहले लीडर लोग गुपचुप से जाएँगे। पूरी तैयारी के बाद मेरा जाना तय हुआ। तब तक चुपचाप राहों/लइयो बाजार में जाकर सदस्यता काटी जाएगी। कोलियरी में सदस्यता-बुक पकड़े जाने का खतरा था, इसलिए बुक राहों बाजार के महतो के यहाँ रखवा देने का जिम्मा सरपंच जयराम महतो ने लिया। मैं चुनाव के दिनों में एक बार केदला बस्ती हो आई थी। राहों में भी जंगल की लड़ाई को लेकर ग्रामीणों की मीटिंग कर चुकी थी। ग्रामीणों का मोह राजा साहब से टूटने लगा था; पर भय और लिहाज बना हुआ था, जिसे तोड़ने

के लिए मैं चार-चार मीटिंग और आन्दोलन का सहारा ले रही थी। कोलियरी में केवल राजा साहब का ही नहीं, उनके साथ उनके लठैतों, पहलवानों, कर्मचारियों, ठेकेदारों का हित भी जुड़ा था, इसलिए इतने लोगों से एक-साथ लड़ाई लड़ना सम्भव नहीं था। मजदूर कितनी भी एकता करते पर केदला कोलियरी में ठेकेदार का व्यूह महाभारत के व्यूह से भी अधिक सुदृढ़ था। अर्जुन भी शायद तोड़ न पाता उसे। इसलिए बड़े ठेकेदारों के खिलाफ मजदूरों के साथ-साथ पैटी ठेकेदारों के हितों को भी जोड़ा गया। पैटी ठेकेदारों की रायल्टी की दर ज्यादा थी। हमने उसे कम कराने का इस शर्त के साथ वायदा किया था कि उनकी रायल्टी दर कम होने पर, वे मजदूरों का रेट भी बढ़ा देंगे। हालाँकि हम अच्छी तरह जानते थे कि ऐसा वह नहीं करेंगे और मजदूरों को फिर उनके खिलाफ भी लड़ना पड़ेगा। स्वार्थी की एकजुटता तोड़ने के लिए यह पासा फेंकना जरूरी था। दरअसल सबसे अधिक 'खटाली' पैटी ठेकेदार की होती थी। जोखिम भी वही उठाता था। मजदूरों से सीधा सम्पर्क भी उसी का था। बाकी तो 'भूत-मालिक' (घोस्ट लॉड्स) थे। हालाँकि मुनाफा सबसे कम इसी का था। सो मजदूर इसी को अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानता था, चूँकि भुगतान वही करता था और अधिक मुनाफे के लिए मजदूर का पेट भी वही काटता था। दोनों को दोस्त बनाकर बड़े ठेकेदारों के वर्चस्व को तोड़ने की मुहिम हमने चलाई। ललित बाबू जो घसियादास की मियाँ बाई की मार्फत हमारे साथ आए थे, इस काम में जुट गए। सरदारों की एकता मजदूरों के पक्ष में जाए, उनके विरोध में नहीं, इसके लिए भी मजदूरों, ग्रामीणों एवं पैटी ठेकेदारों में से भी कई स्तर पर लोग तैयार और तैनात किए गए।

ग्रामीणों ने डटकर साथ दिया। फिर हमारी जंगल और पानी की लड़ाई के चर्चे भी फैल चुके थे। टाटा की जमीन पर स्कूल बनाने की चर्चा भी पुरजोर थी। मजदूरों का विश्वास जम रहा था। संघर्ष और संगठन के लिए सबसे जरूरी, सबसे अहम तथ्य होता है विश्वास। इसे हमने अर्जित कर लिया था। सुरंगें बिछ गई थीं। आग लगानी बाकी थी। फिर तो एक के बाद एक विस्फोटों का सिलसिला शुरू होना था।

दो

सीता अपनी बहनों के साथ खटती थी। चारों बहनों की धूम पूरे कोलफील्ड में थी। उन चारों को खटाने के लिए दो-दो मलकट्टे भी कम पड़ते थे। कहीं सीता की माय सुमित्रा आ जूमती (जुटती) तो गजब हो जाता था। झोड़ा भरा हुआ न मिलने पर सब कामिनें (औरत कामगार) मलकट्टों पर हँसती थीं। क्या भाग-भागकर, 'हाथे-हाथ' थोड़ा बदलकर, चट से 'दूसर भरल' (दूसरा भरा) झोड़ा लेने आ जाती थीं सीता और प्यारी। रनिया और सरस्वतिया आगे-आगे पारी बाँध के माटी-पत्थर फेंक या कोयला चट्टे पर साज, सीता और प्यारी से 'भरल' झोड़ा लेकर खाली झोड़ा थमा जाती थीं। सीता की माय सुमित्रा तो इन तीनों से फुर्तीली नज़र आती थी। वह शुकरा के साथ ही अधिक खटती थी। सीता और प्यारी के मरद के साथ चार कामिनें खटती थीं पर वे उन चारों को पूरा माल नहीं दे पाते थे। इसलिए मुंशी बाबू ने इनके साथ खटने वाले मलकट्टे ही बदल दिए और इनके मर्दों के साथ दूसरी कामिनें लगा दीं।

चारों बहनों की देह लशकती थी। खूब काली, केन्दू पत्ते के गाछ-सी थी उनकी देह! गठी-गठी, गुथी-गुथी, पत्थर-सी मजबूत पर हाथ रखो तो इतनी कोमल कि फिसल जाए! चुटवा नदी की तलहटी में पड़े सपाट काले पत्थरों-सी, साफ-सुथरी, सरपट देह! चारों जनी रात को रोज़ नहाकर कडुआ तेल (सरसों का तेल) लगाती थीं। चाहे कितनी ही ठंड पड़े पर इनका नहाना नहीं रुकता था। छुट्टी के दिन घर-बार और दीवारें, मिट्टी और गोबर से लीपना-पोतना या जंगल से बीनकर लाई लाल, बैंगनी, काली मिट्टी से

‘पोतल’ (पुती हुई) दीवार पर ‘छाई’ (राख) के फूल बनाना, सुमित्रा और सीता का काम था। एतवार के एतवार सिर नहाकर लम्बे काले बाल सुखाना, फिर एक-दूसरे का सिर देखना, कहीं जूँ-वूँ तो नहीं तो जैसे उनकी ड्यूटी का हिस्सा-ही था। सीता और सरस्वतिया के बाल घुँघराले थे, अपने ही जुल्फें निकल आती थीं। कसी-कसी देह पर खूब टाइट बाहों वाली ब्लाउज, लाल पाड़ वाली साड़ी पहनकर, चारों बहनें घाटों, राहों या लइयो बाजार जाती थीं, तो बाज़ार लहक उठता था। अलग-थलग-सी दीखती थीं वे। इन्हें बड़ी हसरत-भरी नज़रों से देखते थे मुंशी और ठेकेदार। परिवार बड़ा था। शुक़रा सरदार का रुआब भी था। घर में लोहार के काम का पूरा सामान था, इसलिए धौड़े में भाले भी बने पड़े रहते थे। किसी की हिम्मत न होती थी छेड़खानी करने की। फिर चारों बहनें हमेशा साथ रहती थीं। वे एक-दूसरे के कमर में हाथ डालकर चलती थीं। ऐसे भी आदिवासी लड़कियाँ कमर में हाथ डालकर इकट्ठी ही चलती हैं, अकेले नहीं। सुमित्रा अपनी बेटियों पर जान देती थी। सारी कमाई एक जगह बाप के पास जमा होती थी और पेमेंट के बाद वह सबका हिस्सा बाँटकर अलग-अलग जोड़ों को दे देता था। राँची-धौड़ा में हर रविवार को खस्सी (बकरा) कटता था। विलासपुरिया मजदूर भी उसी में अपना हिस्सा डालकर ले जाते थे। सीता का मरद खस्सी लाकर बेचने भी लगा था। रविवार को पीकर सब ‘मातल’ रहते थे और यह नशा सोमवार तक रहता था। फिर सोमवार को राहों बाजार जाते तो यहाँ भी चबेना के साथ एक आध कट्टा सभी पी-पीकर लौटते। रात को फिर हंड़िया का दौर चलता। कभी-कभी पीने में मुंशी भी शामिल हो जाता। ठेकेदार बाबू आ जाता तो उसके लिए खासतौर पर खस्सी ‘कटता’।

प्रायः साँझ में सब सरदार के चबूतरे पर जमा होते और दिन-भर की मुंशी, ठेकेदार या किसी साथी मजदूर की अथवा हजारीबाग शहर की चर्चा, वे सब वहीं बैठकर करते। भुगतान के बँटवारे में झगड़े का निपटारा भी सरदार ही करता। उससे न निपटता तो ठेकेदार को बुलाया जाता।

इन खदानों में उन दिनों मैनेजर नाम की कोई चीज़ न थी। राजा साहब

ने खाना-पूर्ति के लिए एक मैनेजर रख छोड़ा था, जो सभी ठेकेदारों का मैनेजर था। वह परेज बँगला में ही रहता था। यदा-कदा वहीं बैठता था। खदान में कभी भूलकर भी नहीं जाता था। ठेकेदारी में उसका भी हिस्सा था। काहे को वह आने लगा भला खदान में? कभी-कभी ठेकेदार तंग करता तो कोई इक्का-दुक्का पुराना मुँह-लगा मजदूर, जिसे या तो मुंशी अथवा किसी ठेकेदार की शह हो, ही बस परेज बंगला शिकायत करने पहुँचता था, अन्यथा किसकी मज़ाल कि परेज बँगले के दफ्तर पहुँच जाए! वह तो राजा साहब का दफ्तर था। 'बड़-बड़' (बड़े-बड़े) हाकिम बैठते थे वहाँ। भला वहाँ मजदूर का क्या काम? कोई ऐरा-गैरा 'ढुक' (घुस) जाए, यह सम्भव नहीं था। हाँ, कभी-कभी कुछ बाबुओं या ठेकेदारों की मुँह लगी कामिनें या उनके दलाल जरूर मैनेजर से छिपकर परेज बंगला पहुँच जाया करते थे। परेज ऑफिस के कई स्टाफ-बाबू और अधिकारी भी ठेकेदारी में पत्तीदार थे। इस नाते वे कोलियरी में आते थे। कइयों के तो विलासपुरी कामिनों से भी सम्बन्ध थे। सो रात को कोलियरी में धौड़े में ही दारू-चबेना, चुहलबाजी होती रहती थी। कामिन का मरद 'बाबू-मन को' ही सब सुविधाएँ उपलब्ध कराता था। उसके बदले उसे एक पेटी बोटल, खस्सी का एक बड़ा टुकड़ा या कभी-कभी 'कम्मनी' (कमाई) में कुछ जोड़ दिया जाता था वह भी किसी और की कमाई घटाकर। हाँ जब माँगे, तब कर्ज की सुविधा उसे जरूर मिलती थी। ऐसी ही सब सुविधाओं के बदले उसकी कामिन बाबू साहब के साथ बँध जाती थी। घसिया दास की मियाँ बाई का किस्सा चर्चित था। लाल बाबू मियाँ पर मुग्ध थे यह जगजाहिर था।

अन्य मजदूरों की तरह सीता का परिवार भी मुँह-अँधेरे उठकर, 'भोथा-भात' (पानी डाला हुआ बासी भात) खाकर, साथ में एल्यूमिनियम के डिब्बे में या माटी की हाँड़ी में पानी तथा दूसरी हाँड़ी में पानी-भात डालकर काम पर चले जाते। ऐसे तो खदान में ड्यूटी पर जाने का समय मौसम के अनुसार प्रातः 7 और 8 बजे के बीच बदलता रहता था। मुंशी उसी समय आते थे और दिन में 12 से 2 बजे तक खाने की छुट्टी रहती थी लेकिन काम के घंटे व्यवहार में न तो निर्धारित थे, न निश्चित ही। इसलिए जैसे ही 'सूझने' लायक होता,

मजदूर खदान में चले जाते और 'सूझना' बन्द हो जाता, तो लौट आते। लाइट का इन्तजाम नहीं था। ज़रूरत पड़ने पर डीजल में भीगा कपड़ा जलाकर रोशनी की जाती थी। सभी के सभी पीस-रेटिड-ठीका मजदूर थे। जितना खटते थे, उतना ही पैसा पाते थे। दिहाड़ी का हिसाब नहीं। एक टन पर रेट तय था। सब को 'कचिया' कोयला (बिना ब्लास्टिंग किए गैती से जो कोयला काटा जाता है उसे 'कचिया' कहते हैं।) काटना होता था। मिट्टी-पत्थर का रेट चौका पर था। हूल मारना (पत्थर तोड़ने के लिए ब्लास्टिंग की खातिर बारूद भरने के लिए किए गए सुराख को हूल कहते हैं।) भी उसी रेट में शामिल था। हार्ड-पत्थर और साफ्ट-पत्थर का रेट अलग होता था, कोयले का अलग। फायर-क्ले भी इन खदानों में होती है और पत्थर जैसी हार्ड मिट्टी भी, जो बिना डायनामाइट के नहीं टूटती पर टूटने पर चूर-चूर होकर बिखर जाती है। इनका रेट इतना कम होता था कि परिवार का पेट पोसने लायक कमाने के लिए मजदूरों को 12 घंटे तो अवश्य खटना पड़ता था। कोई ज्यादा ज़रूरतमंद मजदूर हुआ, तो वह रात को 3-4 घंटा लोडिंग भी कर आता था। लोडिंग भी रात भर चलती थी। जब ट्रक आता, लोडिंग करनी पड़ती थी। उसका कोई समय निर्धारित नहीं था। ठेकेदार और मजदूर दोनों के लिए वही तो असली लक्ष्मी थी। उसी से पैसा आता था। इसलिए गाड़ी कभी रुकती न थी। ट्रकलोडर पहले गाड़ी 'लोकने' (पकड़ने) के लिए रात दिन अगोरते रहते थे।

सीता दो बच्चों की माँ बन गई थी। बिना मरद के कमाई में पूरा न पड़ता था। छोटी को वह पीठ पर बाँधकर ले जाती और बड़ी के सिर पर भात की हाँड़ी या पानी की देगची रखकर साथ ले जाती। खदान में वह ऊपर टेंगरी पर बिठा देती किसी चट्टान के साये में। 'बड़की' छोटी बहन को खिलाती रहती तो, कभी उसे सुलाती वह। दिन-भर माँ को खटते देखती। कभी पत्थर बीनकर खेलती, कभी छोटी बहन को कुछ-कुछ कहती, जिसे वह खुद भी समझती न थी, न ही छुटकी समझती थी। कहानी सुनना और सुनाना दोनों को ही अच्छा लगता था। खदानों में काम देना और हाजिरी गिनना मुंशी का ही काम था। नापी भी वही करता था। माइनिंग बाबू (ओवरमैन) चार-पाँच

खदान में एक होता था, जो साँझ को मुंशी की रिपोर्ट के आधार पर अपनी रिपोर्ट भेज देता था। हालाँकि माइनिंग सरदार को होल में ब्लास्टिंग करवानी होती थी, पर कानून के विपरीत यह सब काम मजदूरों से ही कराए जाते थे। मजदूर भी ब्लास्टिंग स्वयं करना चाहता था चूँकि उसे 'पुरकस' (भरपूर) बारूद भरने का मौका मिलता था, जिससे 'माल' (यानी पत्थर-माटी या कोयला) ज्यादा अच्छी तरह टूटता था, वरना माइनिंग बाबू के भरोसे छोड़ने पर, वह 'माटी-टोपी' चोरी कर बेच देता था, जिसके चलते ब्लास्टिंग पूरी तरह नहीं होती थी। फलतः मजदूरों को ज्यादा मेहनत करनी पड़ती थी, इससे उनकी कमाई भी कम होती थी। हूल लगाने में ही तो फिरतू का हाथ उड़ गया था और अब वह चौक में बैठकर भीख माँगने लगा था।

फिरतू उस दिन सवेरे ही जाकर होल में ठसानी कर आया था। माइनिंग बाबू ने चैक भी कर लिया था। ब्लास्टिंग भी हो चुकी थी। कुछ होल उड़े नहीं थे। फिरतू वही देखने गया था कि सभी होलों में बारूद उड़ा था या नहीं। जैसे ही वह होल के पास गया, होल उड़ गया। साथ ही उसका हाथ भी उड़ गया। यह तो गनीमत थी कि बारूद कम था कि वह समूचा नहीं उड़ा। अगर पूरी 'ठसानी' होती तो उसका तो पता भी न चलता। फिरतू चिल्लाया। मजदूर भी दौड़े। 'ह-ह-ह' करता माइनिंग सरदार भी भागते-भागते रुक गया और खड़ा का खड़ा रह गया। एक भयानक चुप्पी छा गई पूरी पोखरी में। थाना-पुलिस को खबर तो कोई करता ही नहीं था। कोई डॉक्टर के पास भी नहीं जाता था, ताकि पुलिस या माइनिंग विभाग को पता न चल जाए। सो वहीं पर कपड़ा फाड़कर पट्टी कर दी गई। मजदूर जो आ जुटे थे, उन्हें छुट्टी दे कर धौड़े में भेज दिया गया। फिरतू को धौड़े में लाकर लिटा दिया गया, ताकि यह सिद्ध हो सके कि घटना घर में घटी थी। यह सब इसलिये कि मजदूर को दुर्घटना का मुआवज़ा न देना पड़े। घटना-स्थल पर से खून समेत सभी प्रमाण मजदूरों ने ही समाप्त कर दिए। फिरतू के परिवार को मनचाहा पुरकस कर्ज दिया गया ताकि कोई हल्ला न करे कि इलाज के लिए पैसा नहीं दिया। मजदूरों के लिए परदेस में कर्ज मिलना भी कम बड़ी बात न थी। कोलियरी में सौ (100) रुपया

सैंकड़ा सूद की दर पर कर्ज मिल जाता था। घर जाने का भाड़ा लेता तो वहाँ जाकर खाता क्या? कौन खिलाता उसे? कम-से-कम यहाँ अगल-बगल धौड़े वाले उसकी खोज-खबर तो कर ही लेते थे। यूनियन पूरी तरह बनी नहीं थी। जंगलों में मीटिंग हुआ करती थी। इस दुर्घटना की चर्चा भी राहों में गुप्त मीटिंग में हुई थी।

‘अभी समय नहीं है आवाज़ उठाने का इसलिए सहो’ यही फैसला लिया था सबने।

उस दिन से मजदूरों ने ठसानी का काम बंद करने का निर्णय मन-ही-मन ले लिया था। वे धौड़ों में भी यह चर्चा चलाने लगे थे कि अब जब बारूद ठसानी का काम उनका नहीं है, तो वे इसे क्यों करें? उनका यह काम करना गैर-कानूनी है। बिना हाज़री दर्ज किए या आर्डर के ठसानी करने पर अगर चोट-घाट लग जाए तो मुआवजा भी नहीं मिल सकता। तो ऐसे ही यह काम क्यों करें?

“आखिर तो जीने के लिए कमाते हैं न! अधिक कमाई के चक्कर में मर ही जाएँगे या लाँगड़-लूल्हा हो जाएँगे तो के पोसेगा हमनी के? ज्यादा कमाये से हमनी के का फ़ैदा होत है? हमनी ते ज्यादा तो ठेकेदार के फ़ैदा होत है। ऊ तो हमरा के ज्यादा पैसा न देत है, ज्यादा खटाली या फालतू काम करे के बदले। हमनी भी तो ठीका पर हैं। तो काहे ले आपन जान गँवाए के उकर घर भरेंगे? ई जोखिम के काम मा हमरा हिस्सा भी तो होवे के चाही।” करमू बोला था। करमू सरदार फिरतू का दामाद था।

धौड़े में बहस चल पड़ी थी भीतर-ही-भीतर पर ऊपर से सब शान्त था। मुंशी और ठेकेदारों को भी अकबकाहट-सी महसूस हो रही थी। आदत के विपरीत वह फिरतू को घर पर भी देख आए थे। असल में करमू सरदार की नाराज़गी से वे डर भी रहे थे। वह लगभग 150 मजदूरों का सरदार था। चाहे वह कितना भी वफ़ादार रहा हो पर उसकी नाराज़गी 150 मजदूरों के माध्यम से जाहिर हो सकती थी। वही करमू सरकार अब यूनियन की मीटिंगों में जाने लगा था। वह गुस्से में था। मजदूर अपने सरदार पर आस लगाए बैठे थे। शुरू

में सरदारों ने यूनियन का विरोध किया था। वे मजदूरों को रोकते थे पर मजदूरों ने तर्क करना शुरू किया। चैता के बाद फिरतू की घटना सामने थी। यूनियन ने बताया था कि केस करने पर फिरतू के हाथ उड़ने से, उसकी भरपाई ठेकेदारों को देनी पड़ेगी। तब से मजदूर उखड़ा-उखड़ा रहने लगा था।

“यहाँ तो मरने पर भी कोई नहीं पूछता है! कानून तो घायल होने पर भी भरपाई करे का है। हम ही आन्धर हैं। आपन भला-बुरा नहीं विचारते। गाय-गोरू माफिक सरदार हकाय चलत है हमनी के। आखिर हमनी सब भी तो इन्सान हैं! अब तक हम पीछू-पीछू चलत रहे सरदार के, अब हमनी जे कहब, सरदार के ओहे करे पड़तै। बोल सरदार, तू हमर साथ है या ठेकेदार के साथ?” जोहित राम ने सवाल दागा।

करमू चुप रहा। मजदूरों में हल्ला होने लगा।

“कल के बताएँगे।”

अगले दिन सवेरे-सवेरे करमू हजारीबाग चला आया मुझसे मिलने। साँझ को लौटा तो चेहरे पर एक दृढ़ता थी एक संकल्प था। आँखों-ही-आँखों में मजदूरों ने उसका फैसला पढ़ लिया।

“अभी ठेकेदारों को खबर नहीं होनी चाहिए, नहीं तो वे तुम्हें हटा देंगे। अभी सरदारों को फोड़ो और साथ मिलाकर फिर एक दिन मीटिंग में मुझे बुलाओ। मैं सब इन्तजाम करके आऊँगी।” मैंने उसे ताकीद की थी।

फिरतू को चौक पर बैठकर भीख माँगते देख आते-जाते मजदूरों के मन में एक बेचैनी पैदा होती थी। वह उन्हें जहाँ उनकी कमजोरी का अहसास कराता था वहीं वह उन्हें एक होने की तरफ प्रेरित भी करता था।

“हमें एक होना चाहिए।” यह मन्त्र मन-ही-मन उनके कानों में बराबर गूँजने लगा था। ‘डर, भय’ बस इसी से मुक्ति पानी थी। किस दिन? सवाल यह भी था। कई सरदार टूट चुके थे। लोडर साथ नहीं दे रहे थे। उनकी कमाई मलकट्टों से ज्यादा होती थी और ठेकेदार भी उन्हें बाकी सब पर तरजीह देते थे। वक्त पर उनसे मलकट्टों को पिटवाने का काम भी लिया जाता था। लोडर ज्यादा पलामू और गया के थे। विलासपुरी लोडर नहीं थे। विलासपुरी जल्दी

संगठित हो जाते हैं। शुरू में जितना डरपोक होता है, संगठित हो जाने पर वह उतना ही निडर भी हो जाता है। उनकी औरतें अधिक बहादुर होती हैं।

राँची वाले आदिवासी या तो साथ आते ही नहीं, आ जाते हैं तो उन्हें खुदा भी वापस नहीं कर सकता।

पलामू और गया के लोडर अधिकांशतः नोनिया, पासवान या महरा थे। नोनिया छोड़कर बाकी सब अकेले खटने आते हैं। वे जल्दी एक नहीं होते; पैसा घर भेजना है, इसकी चिन्ता उन्हें सोचने का मौक़ा नहीं देती। ऐसे अकेले काम पर आने वाले लोग अधिक लोभी भी हो जाते हैं पर ऐसे मजदूर यूनियन में आने पर किसी भी यूनियन का अगला (हरावल) मारक दस्ता बन जाते हैं। सो पलामू और गया के मजदूरों को फोड़ने का काम शुकरा सरदार को मिला चूँकि राँची वाले, उनमें भी खासकर आदिवासी औरतें, ट्रक लोडिंग का काम अधिक करते हैं, सो शुकरा ने भी सुमित्रा, सीता, सरस्वतिया सभी को इस काम पर लगा दिया।

तीन

यासीन मियाँ सीता की पोखरी का मुंशी था। हाज़िरी भी मुंशी ही लगाता था, नापी भी वही करता था और काम भी वही बाँटता था। ठेकेदारी के दौरान नियमानुसार अलग से हाज़िरी लगाने वाला कोई था ही नहीं। हिसाब-किताब के लिए इन खदानों का मुंशी ही अपनी डायरी में सबके नाम चढ़ाता था। हाज़िरी-बही में तो कम नाम होते थे और वह खाता ठेकेदार के पास रहता था। उसे तो सरकारी अधिकारियों को दिखाने के लिए भरा जाता था। इसलिए जिसे हाज़िरी बाबू का पदनाम भी दिया गया था, वह भी यह काम नहीं करता था। हाँ, रजिस्टर वह ज़रूर तैयार करता था। मुंशी होने के नाते दरअसल यासीन बाबू ही सीधे मज़दूरों से जुड़ा हुआ था। ठेकेदारों का सारा दारोमदार इन मुंशियों पर ही होता था। रेजिंग (कोयले के उत्पादन) से लेकर वेतन के हिसाब तक, सब का हिसाब यही लोग रखते थे।

दरअसल केदला में रेजिंग कांटेक्टर के नाम से ही नियमानुसार बड़ी कम्पनी को ठीका मिलता था, किन्तु वास्तविक रेजिंग (उत्पादन) पैटी ठेकेदार और मुंशी ही करवाते थे। पैटी ठेकेदार कोयला उत्पादन कर बेचते और रायल्टी बिचौलिए ठेकेदार को देते थे। बिचौलिए ठेकेदार बिना काम किए अपना हिस्सा रखकर रायल्टी कम्पनी को दे देते थे। उसी तरह ये कम्पनियाँ अपना हिस्सा रखकर रायल्टी राजा रामगढ़ को देती थीं। उसी पैसे से राजनीतिक शक्ति बनकर राजा साहब चुनाव लड़ते थे। कभी सोशलिस्ट पार्टी के साथ हो जाते, तो कभी किसी और के साथ। यूँ वे कांग्रेस पार्टी को अपना शत्रु मानते

थे, पर अपने स्वार्थहित में वे किसी से भी अपना हाथ मिला सकते थे। हालाँकि उन्होंने संविद सरकार में मंत्री-पद भी ले लिया था। अपनी पार्टी के लिए वह कांग्रेस से भी गुपचुप मिलते रहते थे। संविद सरकार को समर्थन देने के बदले वे अपनी सम्पत्ति पर से केस उठा लेने की सौदेबाजी बराबर करते रहते थे। संविद सरकार को इसकी खुन्दक थी। अब उनका विवाद बिहार सरकार से और भी अधिक बढ़ गया था। बिहार सरकार उस केस का शीघ्र निपटारा कर खदानों का अधिग्रहण करना चाहती थी ताकि राजा साहब की धन-शक्ति के बल पर राजनैतिक भयादोहन करने की ताकत कम हो जाए। राजा साहब ने केस दायर कर कोर्ट से स्टे-आर्डर ले लिया था चूँकि वे केस को लटकाए रखना चाहते थे, ताकि उन्हें रायल्टी से बराबर धन आता रहे। प्रवण चटर्जी, जो सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष थे ने इस केस में स्वयं रुचि ली, सरकारी वकील को मुस्तैद करके रातों-रात तैयारी करवाई और कोर्ट से रसीवर बैठाने का आदेश ले लिया। इससे पहले कि राजा साहब ऊपर वाले कोर्ट में जा कर स्थगनादेश ला पाते, रसीवर ने परेज-ऑफिस और खदानों पर पुलिस की सहायता से कब्जा भी कर लिया। केदला की सारी रायल्टी अब रसीवर के पास जमा होने लगी।

रसीवर आने के बाद ही केदला-फील्ड में यूनियन का बनना सम्भव हुआ था, चूँकि अब खदानों में बिहार सरकार का हस्तक्षेप संभव हो गया था। अब सरकार द्वारा पुलिस और प्रशासन पर भी दवाब डाल कर कार्यवाही करवाना संभव हो गया था। इन्हीं प्लस-माइनस प्रभावों के बल पर मैंने केदला में भी यूनियन बनाने की योजना बनाई और यूनियन का विकास संभव हुआ। मजदूरों की एकता बढ़ती रही ठेकेदारों का मनोबल टूटता रहा। एक दिन मेरी मीटिंग धूम-धड़ाके से केदला-चौक में हो गई थी। हजारों मजदूर रात के अँधेरे में बाल-बुतरू समेत मरने को तैयार होकर मीटिंग सुनने आए थे। ठेकेदार के लठैत लाठी-भाला लेकर खड़े रह गए, पर किसी की हिम्मत न हुई इतने मजदूरों के बीच हमला करने की। पुलिस भी थी। अखबार वाले भी थे। मार होती तो मजदूर भले कुछ मरते, पर ठेकेदार भी एक न बचता। न ही उसके पहलवान जिन्दा रहते। सो उस दिन ठेकेदार चुप्पी साध गए थे।

इन्हें बनती-बिगड़ती, घटती-बढ़ती परिस्थितियों के बीच यूनियन मजबूत होती रही मजदूरों की एकता संगठन में बदलने लगी और ठेकेदारों का गुस्सा भय में। मजदूरों के अपने अस्तित्व की, पहचान की, जिन्दगी की सुरक्षा की माँग के साथ-साथ अब अधिक मजदूरी की, बोनस की माँग की तैयारी भी होने लगी। ठेकेदारी हटाने की चर्चा भी शुरू हो गई, जो बाद में सरकारीकरण की लड़ाई में परिवर्तित हो गई। हमने खदानों के सरकारीकरण की लड़ाई भी छेड़ दी। हड़ताल का नोटिस दे दिया गया 4 दिसम्बर 1972 को कोकिंग कोल खदान घोषित कर केदला का राष्ट्रीयकरण हो गया। लेकिन ठेकेदार सुप्रीम कोर्ट चले गए। स्टे-आर्डर ले आए। केस चलने लगा। हड़ताल चालू रही। वह तभी टूटी जब डेढ़ बरस खदानें बन्द रहने के बाद केदला का नाम दूसरी बार सरकारीकरण की सूची में आया। सरकारीकरण के बाद शुरू हुई भारत सरकार के साथ लड़ाई। ठेकेदार के साथ मुंशी सुपरवाइजर बने बाबुओं से भी मजदूरों का युद्ध ठन गया था।

चार

पतला-दुबला, गोरा, तीखे नैन-नक्श, होंठों पर हमेशा मुस्कान, तेज भेदती हुई-सी आँखें, यासीन के चेहरे को सलोना, आकर्षक, मोहक और चुम्बकीय बना देती थीं। यही आँखें तो कभी-कभी कामिनों के मन-प्राण में उतर जाया करती थीं। कामिनें उसकी मुस्कान पर भी व्यंग्य-बाण फेंकती रहती थीं। यासीन के लिए कोई भाभी तो कोई दीदी, तो कोई अल्हड़ मदमस्त भामिनी थी, वह कई-कई रूपों में उन्हें देखता, पुकारता, मानता था, पर बिना मरजी जबरन कभी कुछ न करता था। धीमा बोलता था। पक्का हिसाबी था। 'एको' पैसा न मारता था, न छोड़ता था। 'बख्त' पर मज़दूरों का काम भी चला देता था। ठेकेदार का भी विश्वासी था और मज़दूरों का भी दुश्मन नहीं था भले दोस्त न हो। वह दूसरे मुंशियों की बनिस्पत मज़दूरों के ज्यादा नज़दीक था। खासकर कामिनें बहुत मानती थीं उसे। उनके बच्चे काम पर साथ आते तो वह उन्हें अपने गिर्द खेलने देता था। 'दूध-पियाने' की छुट्टी माँगने पर वह कामिनों को तंग न करता था।

अभी उसने अपना निकाह नहीं पढ़ा था। घर में तीन बहनों का निकाह करना जरूरी था। बाप नहीं था, इसलिए वह अपनी पूरी कमाई का आधा घर भेज देता था। माँ उसकी कमाई पर जिन्दा थी। छोटा भाई भी यहीं उसके पास था, जो पढ़ता था और उसके साथ काम में हाथ बँटाता था। काम भी सीखता था।

सीता और उसके मरद दोनों ने चूल्हा तो अलग कर लिया था पर गुजर करना कठिन था। वह और अधिक पीने लगा था।

“इतना मत पियो कि सड़क पर गिर जाओ। घर के लिए भी कुछ बचा कर रखो।”

यासीन मियाँ ने कई बार सीता के मरद को समझाया। पता नहीं सीता के मरद के दिमाग में क्यों कभी भी उसकी कोई भी नसीहत नहीं अटती थी? वह कई बार सीता से झगड़ जाता। अरखे (कार्यस्थल) पर भी वह सीता को पूरा माल (कोयला या मिट्टी-पत्थर) नहीं दे पाता था। जब सीता झोड़े का माल फेंक कर लौट आती, तब वह टोकरी में माल बोझना शुरू करता, तब तक सीता को खड़े रहना पड़ता। इसी से यासीन ने उसे कई बार डाँटा भी था। शुकरा भी जो दंगल-सरदार था, उसे अपने दंगल से हटाने की चेतावनी दे चुका था। कम खटने वाले को सरदार और मजदूर पसन्द नहीं करते चूँकि उनकी कमाई पर उसका असर पड़ता। न जाने किस कुण्ठा से ग्रसित था वह कि जब तक सीता लौट न आए, वह पास पड़ी टोकरी भी भरकर तैयार नहीं रखता। वह खड़ा-खड़ा सीता को देखता रहता। दूसरे मलकट्टे (कोयला काटने वाले मजदूरों को मलकट्टा कहते हैं) दो-दो कामिनों को खटाते थे। यह एक सीता को भी नहीं खटा पा रहा था। बार-बार ठेकेदार ने भी उसे डाँटा था।

“भगा देंगे अगर काम नहीं करेगा तो।” पर सीता उसके बदले दुगुना खटके भरपाई कर देती थी।

“तोहनी के काम चाही ना, सो हम पुराय देब। झूठो उकरा के डाँट नाय।” सीता कहती। फिर भी यासीन ने उसे बदल कर सीता के साथ दूसरा मलकट्टा लगा दिया था। सीता का मरद शायद खुद को सीता से छोटा समझने लगा था। वह उससे डरने भी लगा था। इसलिए अब काम में उसका मन नहीं लगता था, न ही वह घर में टिक कर रह सकता था। ससुर से उसकी पटरी बैठती न थी। उससे वह रोज़-रोज़ झगड़ने भी लगा था, इसलिए वह घर से भी कटा-कटा रहने लगा था। पहले तो दारू पीकर घर में पड़े रहना उसकी आदत थी। अब वह ज्यादा समय घर से बाहर ही रहने लगा। शुकरा से हर रोज़ झगड़ा होता और सीता से बतकही।

अब वह देश जाता तो तीन-तीन महीना तक नहीं लौटता था। सीता

को अकेले घर, बच्चे और खदान का काम सम्भालना पड़ता था। बच्चे पैदा होने के बाद सीता और निखर आई थी। वह चिन्तित रहने लगी थी। चिन्ता ने उसके चेहरे पर मासूमियत भर दी थी जो मोहक लगती थी। मरद अभी तक लौटा नहीं था। देश खबर भेजी तो पता चला कि वह दूसरी जनाना लेकर असम चला गया है। सीता का मन टूट गया। किसी भी काम में मन न लगता। सुमित्रा और शुकरा बेटी के दुःख से चिन्तित थे दुःखी थे पर क्या करते? कोई सामने हो तो पंच बैठकर फैसला करें। असम में कहाँ पर खोजने जाएँ? बरस भर बीत गया। यासीन मियाँ जो खदान में ठेकेदारी में पत्नीदार (हिस्सेदार) भी था और मुंशी भी, ने सीता को दूसरे मलकट्टे के साथ काम दे दिया था। सीता की देह गलती जा रही थी। आँखें जो सदा हँसती थीं, उदास हो गई थीं। सीता खदान में आती थी तो पूरी खदान जान जाती थी कि सीता आ गई। अब वही सीता, कब आती थी कब जाती थी, लोग जान भी नहीं पाते थे।

‘इस हफ्ता चावल के दाम-भर भी पैसा नहीं उठा पाई तुम सीता?’ यासीन मियाँ ने पूछ ही तो लिया था सीता से।

“क्या बात है सीता? कैसे हफ्ता चलाओगी? कमाई तो हुई नहीं?”

सीता की आँखों में आँसू थे। मरद पर गुस्सा भी था।

“जन्म-जला अपने तो भायग गेले और आपन औलाद के हमर खातिर छोड़ गेले। हम केने-केने (कहाँ-कहाँ) देखबै! बचिया बीमार हले, तबै एक हफ्ता ‘नागा’ (अनुपस्थिति) बेशी (अधिक) हो गेल। जे पैसवा हले, ओझा के दिया गेल, बचिया पर ‘छाया’ (प्रेत-छाया) के दूर करे खातिर। अब तो उपासे ही रहे पड़ते। गीदरवन (बेटियों) की फिकर है मुंशी बाबू, हमनी तो खाय बिना भी गुजर कर सकिहये।”

“तू फिकर न कर, सीता! मैं जुगाड़ बिठा देता हूँ। करमू घर गया है। बीच हफ्ता में उसके अरखे (कार्य-स्थल) की कमाई तेरे नाम पर चढ़ाकर पैसा बना देता हूँ। जब वह आएगा तो तू उससे फरया लेना, या अपनी कमाई से चुका देना।”

“ठीके हय ।”

और उस हफ्ता वह बढ़ोतरी पैसा ले आई । उसे यासीन मियाँ अच्छा लगने लगा था । यासीन भी मौक़ा निकालकर हँसी-ठट्टा कर लेता । सीता जो पहले किसी की बात बर्दाश्त न करती थी, अब गुमसुम रहने लगी । यासीन हर हफ्ते सीता के खाते में कुछ-न-कुछ बढ़ाकर चढ़ा ही देता था । उसके इस अहसान के बोझ तले सीता दबी जा रही थी । पैसा न बढ़ता, तो गुजर मुश्किल थी । वह माँ-बाप से माँगना नहीं चाहती थी । दूसरा कोई मरद करने की इच्छा नहीं थी । पर यासीन मियाँ का चेहरा, जो उसकी आँखों के आगे तैरने लगा था । उसका मन काँटे में मछली-सा बिंध गया था । डोर ढीली छोड़ दी मछुवारे ने । एक दिन तो खिंचनी ही थी डोर । यासीन के पास खिंचकर उसे जाना ही था ।

उस दिन खदान में सबसे पीछे रह गई थी सीता । प्यारी ने टोकते हुए कहा “घर नाय चलबे दीदी? बेला हो गेले ।”

“चार झोड़ा माल बाकी हय । ढो के ही आयब । तू जो (जा) घर ।”

प्यारी तथा बाकी सब घर चले गए । वह अकेली माल ढो रही थी जो मलकट्टा काटकर या जमा करके जा चुका था । यासीन उसके पास आया और झोड़ा अलगाने (उठवाने) लगा । सीता पहले तो सकपकाई । यासीन मुस्कराया, फिर उसने हिम्मत जुटाकर उसके हाथ को छुआ ।

“तेरी कसम सीता, मुझसे तेरा दुःख देखा नहीं जाता । मैं तुझे रखने को तैयार हूँ ।”

सीता की आँखों से टपटप आँसू टपक पड़े । होंठों से हँसी भी फूट निकली ।

“पर तोर धर्म तो अलगे है, हमर बिरदारी अलग कर देते! की उस पर बी तू हमरा रखबे?”

“हाँ सीता हाँ, तू जे कहबे ओहिये (वही) हम करब । तू बस हाँ कर दे ।”

“हम धरम नाय बदलब। हमर रीती से ब्याह करे पड़तै। नाय तो तोर धरम माय चार शादी करे के हक हय। हम सैतिन घरे नाय आय देब।”

“नहीं सीता, हमऊ माझी बन जाब। पाहन बुला के ब्याह करब, दूसर ब्याह कभी न करबे। बस तू हाँ कर दे।” उसी की भाषा में यासीन बोला।

और सीता ने हाँ कर दी। माल पूरा उठाकर सीता सीधे यासीन मियाँ के साथ हो ली। एक बेटी को यासीन ने उठाया, दूसरी को सीता ने। दोनों धौड़े में आए तो बिना बोले लोगों ने आँखों-ही-आँखों में सवाल पूछे। सबकी नज़रें सवाल बनकर उठ गईं। नज़रों का उत्तर सीता ने दिया, आँखों-ही-आँखों में।

“हमर मन। तुम लोग कौन हो दखल देये वाले?”

शुकरा को मालूम हुआ। सुमित्रा दौड़ी आई। पर सीता ने एक ही रट लगा रखी थी।

“जे हमर मन कहबे हम ओही करब।”

“जादू कर दिया है यासीन मियाँ ने हमर सीता पर। कोई गंडा-ताबीज किसी मौलवी से करवाकर उस पर फेंक दिया है, तभी तो पगला गई है।” सुमित्रा सबको कहती फिरती।

“न जाने नासपीटा कौन जड़ी-बूटी खिलाय देले है हमर कोयल जैसन बेटी के, कि भयर दिन (भर दिन) यासीन मियाँ के नाम लेत रहल हय। हाय रे! हमर बेटी के भरमा देल है ई साला कटुआ।”

लगता था सचमुच सीता को नशा हो गया हो, नशा यासीन का नशा। जैसे एकाएक बाँध टूट गया हो! बाढ़ की तरह बाँध तोड़ बहने लगा सीता का प्रेम। सीता नदी-सी बही जा रही थी। यासीन भँवर-सा उसे पकड़ने-समेटने के लिए चक्कर काट रहा था। भँवर-सा उसका प्यार उसे भीतर-ही-भीतर अपने में खींचे लिए जाने लगा था।

दोनों सवरे काम पर निकलते सबकी नज़रें उठतीं। राँची-धौड़ा वाले मुँह फेर लेते। विलासपुरी उँगली उठाते।

“ऊ जा रहल है सीता, यासीन मियाँ के साथ!” और मुँह दबाकर सभी हँसते।

कुछ युवक रश्क करते, ईर्ष्या से कुढ़ते वह पहले क्यों नहीं सोचे सीता के बारे में? लड़कियाँ मने-मन खुश होतीं, मुस्कातीं कभी वह भी अपना मनपसंद दूल्हा चुनेंगी। उनका प्रेम भी चुटकी मारता उड़ानें भरता। यासीन और सीता की जोड़ी चर्चा का विषय बन गई थी। दोनों साँझ को काम से लौटते। नहाते। बच्चों को कपड़े पहनाकर घाटो बाजार चले जाते। घाटो में हर शनिवार को मैदान में टाटा-कम्पनी एक फिल्म दिखाती थी। वे भी भीड़ में घुस, बेंच पर बैठ जाते। दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहते। सीता न जाने क्यों बेचैन हो उठती थी, एक पल भी यासीन के आँखों से ओझल हो जाने पर।

ऐसा तो उसे पहले कभी नहीं हुआ था। इसीलिए लोग कहते थे कि जादू कर दिया है यासीन ने उस पर। वह चुपके-चुपके एकटक उसे देखती रहती। यासीन उसकी इस ऊष्मा से अछूता नहीं था। एक घोंसले में जो ऊष्मा मिलती है गर्मी और सुरक्षा मिलती है, वही उसे सीता के सान्निध्य में मिलती थी। वह इतने दिनों तक तो बिना घोंसले वाला पंछी था। न खाने का ठिकाना न सोने का ठौर, न ओढ़ने-बिछाने का जुगाड़। जब से सीता मिली थी, उसने बाहर-भीतर दोनों सँभाल लिया था। अब उसे खुद चूल्हा धराना नहीं पड़ता था। भोरे-भोरे सीता कर लेती थी सब, जब अपना और बच्चों का कपड़ा फींचने जाती तो उसका कपड़ा भी फींच लाती थी। कमाती भी थी। पूरी कमाई उसे लाकर दे देती थी। यासीन सीता को घर चलाने का खर्च देकर बाकी सब खुद रख लेता था। सीता की पूरी कमाई का अब यासीन मालिक बन गया था। यासीन साग-सब्जी लेने जाता तो सीता खुद साथ जाती। देखकर ताज़ी सब्जी लाएगी। सामने खस्सी (बकरे का गोश्त) कटवाकर लाती। अब वह यासीन के चलते हलाल गोश्त कटवाकर लाने लगी थी। इसी बात को लेकर कभी-कभी वह यासीन से मज़ाक भी कर लेती थी।

“आखिर तो खस्सियों का मांस ही है न! कलमा पढ़े से की खस्सी और कुछ बन जैते? की ज्यादा स्वाद हो जैते?” वह पूछती।

यासीन हँसकर टाल जाता। ठेकेदार बाबू को मालूम हुआ तो मुस्कराए। वह कुछ चिंतित भी हुए। कहीं यासीन चोरी न करने लगे, सीता के नाम ज्यादा

नापी न चढ़ाना शुरू कर दे! इसी डर से उन्होंने यासीन को अपनी दूसरी पोखरी में स्थानान्तरित करना चाहा पर यासीन अड़ गया। जिद करके वह वहीं रह गया था। दोनों के प्रेम में फ़रक नहीं पड़ा। यासीन भी सीता की बेटियों को अपनी बेटियों की तरह मानने लगा। ठेकेदारी रिकार्ड में बड़ी बेटियों के बाप के नाम में उसने अपना नाम चढ़वा दिया था, हालाँकि वे सीता के पहले मरद से पैदा हुई थीं। इस बात को लेकर कोलियरी भर में उसकी सराहना हुई थी।

यासीन अब जमीन खरीदने, ट्रक खरीदने के सपने पालने लगा था। सीता की कमाई से घर चलता। उसकी अपनी कमाई 'सरा' (पूरी) बच जाती। शुकरा उससे अभी भी नाराज़ था। यासीन महसूस करता था कि शुकरा को पटाना जरूरी है पर शुकरा माने तब न!

उधर शुकरा की गतिविधियाँ यूनियन में बढ़ गई थीं। मेरी मीटिंग एक रात धूम-धड़के से केदला-चौक में हो चुकी थी। सारे मजदूर रात के अँधेरे में बाल-बुतरू समेत मीटिंग सुनते रहे थे। वे मीटिंग में मरने के लिए तैयार होकर आए थे। ठेकेदारों के लठैत लाठी-भाला लेकर खड़े रह गए पर किसी की हिम्मत नहीं हुई इतने मजदूरों के बीच कुसकने की भी। पुलिस भी थी। अखबार वाले भी थे। मार होती तो मजदूर भले कुछ मरते पर ठेकेदार भी एक न बचता और ना ही उसके पहलवान जिन्दा रहते। उस दिन ठेकेदार चुप्पी साध गए थे। यासीन तो उस खदान के मुंशी के साथ-साथ पैटी ठेकेदार भी था। सबका हिसाब वही रखता था। उसने शुकरा को भी रियायत देनी शुरू कर दी। अब क्या बोले शुकरा? आदिवासी मानुष बारीकियाँ नहीं समझता था। उसका गुस्सा यासीन के प्रति कम होने लगा। गरीब लोग लिहाज़ ज्यादा करते हैं, सो शुकरा भी अब यासीन का लिहाज़ करने लगा। जो सलाम-दुआ बन्द हो गई थी, पुनः चालू हो गई। यासीन में अब उसे कोई खोट नज़र नहीं आता था।

“इन्सान आदमी है ई जे दूसर की औलाद जैसा पोस रहल है।” एक दिन शुकरा ने सुमित्रा से कहा।

“जिकर औलाद है, ऊ तो जाने केने (कहाँ) गूँ खा रहल है! हमर सोने

जैसन बेटी के छोड़ के भायग गेले है दूसरकी के लै के।” सुमित्रा ने जोड़ा।

“हमर बेटी भी तो जवाने है। आखिर कैसे कटत ओकर जिन्दगी? सो कर लेले है यासीन के। अब गारियो देये पर, जानो मराये पर, ऊ न छोड़ते उकरा।” कहकर सुमित्रा माथे पर हाथ धरकर बैठ गई।

“जाये दे! जे करे है करे दे। बिरादरी का डर है, नाय तो हमहू पाहन बुलाय के ब्याह देब सीता के यासीन संग।” शुकरा चिन्तित-सा बोला।

“की होते? बिरादरी के भोज-भात कराय देब। सब भुलाय जैते।” सुमित्रा बोली।

एक दिन पाहन आया और यासीन की शादी सीता के आदिवासी रीति-रिवाज से करवा गया।

यासीन को बीवी भी मिली और कमाई भी। सबने कहा अच्छा सौदा पटाय है उसने। बीवी भी ऐसी-वैसी नहीं! दो जनों जितनी अकेली कमा सके, ऐसी बीवी थी वह। पहले वह उसके धौड़े में आया-जाया करता था, और देर रात गए अपने धौड़ें में लौटता था। अब वह सीता के धौड़ें में ही रहने चला आया।

सीता के गाँव वाले सब रुष्ट हो गए। उन्होंने आदिवासी तरीके से बिरादरी बुलाकर उसे मरा घोषित कर, भोज-भात कर लिया। सीता मुक्त हो गई बिरादरी से भी, पहले पति से भी और पुरानी रूढ़ियों के बँधन से भी। वह अब खटती थी।

“घर पर जमीन किन (खरीद) लेंगे और एक ट्रक भी।” एक दिन यासीन ने सीता को सुझाव दिया। ट्रक लेने का तो भूत ही सवार हो गया था दोनों पर। वह जो कमाती, पूरी-की-पूरी कमाई यासीन को ही दे देती। जमीन किन (खरीद) ली गई, पर यासीन के नाम। ट्रक भी हिस्सेदारी में आ गया पर यासीन और गनी मुंशी के नाम। सीता का नाम कहीं न था, फिर भी सीता को उस पर अटूट विश्वास था।

“आपन हाथ-पाँव काट के ना देवे के चाही, चाहे कोऊओ हो दीदी! आपन गीदरवन (बेटियों) के आगा (भविष्य) भी देखा? कुछ उनकर खातिर भी

रखा?” प्यारी ने उसके अन्धाधुन्ध विश्वास पर प्रश्न करते हुए, उसे समझाया ।

“दुख के दिन सहारा देले है बहिन, एसन आदमी कखनियों (कभी भी) ठग नाय सके हय । हमर जान भी माँगते तो दे देब पर उकर पर सक (शक) न करबै ।’ सीता अपने अडिग विश्वास का तर्क देते हुए उसे कहती ।

यासीन कभी उसके लिए साड़ी ले आता तो सीता उसे डाँटती, “काहे ले पैसा बरबाद करले है? आपन ट्रक किना (खरीदा) जैते तो हमर देह ढक जैते ढेर लुग्गा से अपन-आप । अभी तो किश्त खातिर पैसा बचावे के दरकार हय ।”

पाँच

यासीन मियाँ से सीता को 1973 में पहली औलाद हुई एक लड़की। कोलियरी तब तक सरकारी हो चुकी थी। मैटरनिटी बेंनेफिट का सवाल यूनियन उठा चुकी थी पर पूरी तरह लागू नहीं करवा पाई थी। बच्ची होने पर सीता ने यासीन से मैटरनिटी बेंनेफिट की चर्चा भी की थी।

“मैटरनिटी बेंनेफिट ले लेबै।”

“जाने भी दो हमें नहीं चाहिए बेंनेफिट। मैं उससे दुगुने पैसे तुम्हें जुगाड़ कर दूँगा और बिना खदान जाए तुम्हारी हाज़िरी बन जाएगी। मैं बिरंची बाबू से बोल दूँगा।”

“पर एसन तो सबके फ़ैदा नाय होतै! खाली हमर पॉक़िट भरते!”
सीता तुनक कर बोली।

“अच्छा बाबा, मैं बिल बनवा दूँगा।”

यह कहकर टाल दिया यासीन ने। वह भी ज्यादा अड़ी नहीं। दूसरी बच्ची भी हो गई। इस बार सीता अड़ गई

“इस बार तो बेंनेफिट लेके रहब!” सीता बोली।

“अपनी बेटी के बाप के नाम में भी तुम अपने ही बाप का नाम लिखवा देना, मेरे नाम के बदले।” यासीन ने चिढ़कर कहा।

सीता ने कान पकड़कर अपने दोनों गालों को थपड़ाते हुए कहा

“एसन बात मत कह, पाप लगतै? हमर बाप के नाम तोहर बेटी के बाप पर कैसन लिखतै? तू पगलाय गेल की? दूसर की बेटी के तो आपन नाम

देलय, अब आपन बेटी के नाम देय बखत काहे झंझट कर रहल हय तू?”

पर यासीन ने साफ कह दिया वह अपना नाम नहीं लिखवाएगा। सीता मानो आकाश से गिर गई। प्यार का भूत सिर पर से उतरने लगा। नशा उतरने के बाद शरीर की टूटन-सा, उसका विश्वास भी टूटने लगा। बड़ा धोखा हो गया! बिना सोचे-समझे वह सारी कमाई यासीन को ही देती रही थी। कभी पूछा तक न था सीता ने कि पैसों का क्या किया? कभी सवाल नहीं किया कि जमीन ली है, तो उसके नाम पर चढ़ी है कि नहीं? कभी अलग माना ही नहीं था उसने अपने को। जिस पर उसने सब न्यौछावर कर दिया, वह अपनी औलाद को ‘गछने’ (अपनाने) तक को तैयार नहीं! उस दिन प्यार की बाड़ी में शंका का बीज डला गया था। उसी दिन अविश्वास की लतरें भी पनप कर मन-मगज की दीवारों-मुंडेरों पर चढ़ने लगी थीं। अब उनसे केवल विष-बीज ही झर सकते थे।

‘नाय, हमर धोखा भै गेल, एसनै, मजाके-मजाक में कह देल है, एसन बुड़बेकाही (मूर्खता) के बात। ऊ एसन नाय हय। भरम हो गेले हय हमर मन में, दुनियादारी न समझे है ऊ।’ वह अपने मन को समझाती पर मन न मानता। उस दिन, दिन-भर काम में उसका मन नहीं लगा। रात में यासीन मियाँ कुछ देरी से आया।

“केने (कहाँ) देर भय गेले?” सीता ने भयभीत-सा होकर पूछा।

पहली बार सीता को भय लगा था उससे।

“यहीं हजारीबाग गया था, तोर और तोर बचिया के कपड़े किने खातिर। तू झूठो परेसान होती है। ले साड़ी और फ्राक। दोनों माय-बेटी पीन्धो (पहनो)!” उसने मिली-जुली जबान में रुक-रुक कर कहा।

सीता की जबान बन्द थी पर मन में बहस चल पड़ी थी। वह चुप थी। क्या कहे? किससे कहे? यूनियन के पास शिकायत करे? यह सब लाकर क्या वह उसकी बोली बन्द करना चाहता है? क्यों अपना नाम बाप में नहीं लिखाता?

साड़ी उसने बक्से में रख दी और कभी न पहनने का निर्णय लिया।

बेटी को पुराने लुंगे (कपड़े) में ही लपेटे रही पर फ्राक न पहनाया। उसे उन कपड़ों में दुराव की, धोखे की 'धा' आ रही थी।

पहले तो ऐसा नहीं था वह। कुछ बदल-सा गया था यासीन। दरअसल कोलियरी सरकारी हो गई थी और उसमें बना रिकॉर्ड कोर्ट-कचहरी में भी पक्का माना जाने लगा था। वह पति व पिता में अपना नाम चढ़ाएगा तो सीता व उसकी औलाद उसकी कमाई व जमीन-जायजाद की हकदार हो जाएगी।

अब वह ट्रक और जमीन का मालिक तो हो ही गया था। पैसा भी काफी जमा कर लिया था। घर में माँ का दबाव पड़ रहा था कि अपनी जात से निकाह कर ले पर उसे सीता से डर भी लगता था। उससे भी ज्यादा डर था उसे राँची दंगल से। भले सीता को बिरादरी से अलग कर दिया गया था पर सीता को अगर कुछ भी होगा तो पूरा दंगल उस पर पिल पड़ेगा यह वह जानता था। अब तो यह झगड़ा दूसरे-दूसरे रूप भी ले सकता था। भड़काने वाले इसे साम्प्रदायिकता से लेकर क्षेत्रीयता तक का आधार भी दे सकते थे। उन सबके लिए औरत का आधार तब भी कोई मायने नहीं रखता था। सच तो था कि पुरुष-दम्भ ही सीता की त्रासदी का कारण था पर इस सत्य को स्वीकारने की बजाय, सब दूसरे कारण ही ढूँढ़ने में लगे थे। इस मायने में औरत का महत्त्व, उस अनुपाततः अधिक मुक्त समाज में भी नहीं ही था। इस समाज में भी औरत को छोड़ देना, रख लेना मामूली बात है, लेकिन वहाँ औरत को मर्द छोड़ने की छूट है।

यासीन मियाँ को फिकर यह लग रही थी कि अगर सीता को उससे बेटा पैदा हो गया, तो वह जायदाद का वारिस हो जाएगा। तब क्या होगा? सीता तो धर्म बदलेगी नहीं। उसका अपना निकाह उसकी बिरादरी के अच्छे घर की लड़की से होना तय हो गया था। अब वह सीता से कटने का रास्ता खोजने लगा था, पर उसे मन ही मन सीता की कमाई का लालच भी घेरे हुए था। सीता का विश्वास टूटने पर, होने वाली प्रतिक्रिया से भी भयभीत हो उठता था वह। सीता और सीता के दंगल का गुस्सा उसे सीता से अलग होने से रोके हुए था।

छह

केदला-फील्ड में अब विधिवत् यूनियन बन चुकी थी। ठेकेदारों और ठेकेदारी के खिलाफ जबरदस्त आन्दोलन शुरू हो चुका था। अवध, करमू, पटेल, कीरत राम, तुलाराम, घसियादास एवं शुकरा उराँव और सियाराम तथा दादू राम नेतृत्व संभाल चुके थे। कई कामिनें भी यूनियन के नेतृत्व में आ चुकी थीं। सीता और सीता का परिवार यूनियन का मैम्बर तो बन ही गया था, साथ ही सीता और सरस्वतिया नेतृत्व में भी आ गई थीं। शुरू-शुरू में यासीन मियाँ सीता को यूनियन की मीटिंगों में जाने से रोकता था। उसे उसमें अपने लिए कोई लाभ नज़र नहीं आया था। दूसरे सीता की समझदारी बढ़ने का मतलब यासीन की कमाई का स्रोत बन्द हो जाना भी हो सकता था, जो सीता से उसे प्राप्त होती थी। कहीं सीता उसे छोड़ न दे, ऐसा भी डर उसे हमेशा लगा रहने लगा था।

कोयला-खदानों में प्रायः मुंशी ठेकेदार कुछ एक कामिनों को रखैल के रूप में रख लेते थे, जिसका अर्थ था उनका आर्थिक और यौन-शोषण। हालाँकि सीता और यासीन का पाहन ने विधिवत् ब्याह कराया था पर समाज ने उसे 'रखनी' संज्ञा ही दी थी। 'रखनी' दूसरी औरत होती है और 'घरनी' ब्याहता। इसमें एक और परम्परा भी प्रचलित है, जो एक मायने में बहुत अच्छी है। दूसरा मरद करने पर औरत अपने पहले मरद से हुए, जो बच्चे साथ में लाती है, उनका पालन-पोषण करने का जिम्मा दूसरे मरद को लेना पड़ता है। यहाँ औरतें ही कमाई करके घर चलाती हैं, मरद की कमाई सहायक कमाई होती है। मरद अधिकांश तौर पर महुआ, ताड़ी, हँडिया का काम करता है या लकड़ी

काटता, चीरता-फाड़ता है, नहीं तो खेत में हल नादता है। घर की छत वही बनाता है पर बाकी सभी काम औरतें ही करती हैं। महुआ चुनने, चुआने, बेचने और हँडिया तक का काम भी औरतें करती हैं। लकड़ी काटना, बेचना, घर बनाना, लीपना-पोतना, पशु पालना तो जैसे जन्म से ही इन औरतों के खाते में दर्ज हो जाता है। ऐसी औरतें जो मरद के मरने के बाद दूसरा ब्याह करती हैं, उन्हें भी लोग 'घरनी' कहते हैं। 'घरनी' यानी पत्नी के बराबर का दर्जा। पर समाज की मर्जी के विपरीत बिना ब्याह किए जाकर किसी मरद के यहाँ अपनी इच्छा से रह जाने या बैठ जाने वाली औरत अथवा जबरन अगवा करके लालच देकर लाई गई औरत भी 'रखनी' कहलाती है। यानी दूसरी औरत रखी गई औरत, जिसका घर में कोई दखल नहीं। ऐसी औरतें प्रायः अलग घर में रखी जाती हैं। सीता को समाज ने भी इसी रूप में माना। यह अलग बात है कि सीता ने कभी समाज को मान्यता ही नहीं दी, इसलिए उसने अपने-आप को कभी हीन नहीं माना। इसी कारण यासीन उसके घर पर धड़ल्ले से बिना झिझक रहने लगा था पूरे हक के साथ। वह उसके घर पर कब्जा जमाकर टिक गया था।

सात

सन् 1972 में ठेकेदारी के खिलाफ शुरू की गई लड़ाई ने खदानों का 'सरकारीकरण करो' का रूप ले लिया। मैंने मजदूरों के बूते पर कोयला खदानों में, जब तक खदानें सरकारी न हो जायें तब तक के लिए हड़ताल का एलान कर दिया था। डेढ़ बरस खदानें बन्द रहीं कभी हड़ताल से तो कभी कोर्ट के आदेश से। भारत सरकार ने पहली बार 1972 के दिसम्बर माह में ही इन खदानों को कोकिंग कोल कहकर सरकारी कर दिया था। पर ठेकेदारों ने खाते-बही जमा नहीं किए। वे सुप्रीम कोर्ट में चले गए। फिर लगभग एक वर्ष बाद 1973 में ही केदला का नाम पुनः सरकारीकरण की सूची में आ गया पर ठेकेदार और रसीवर अड़े रहे। मजदूर भी अड़े रहे। तब 1973 में बहुत जद्दोजहद के बाद खदानों का चार्ज एनसीडीसी को मिला।

सरकारीकरण के बाद मजदूरों की लड़ाई शुरू हुई ठेकेदार व मुंशी स्टाफ से। यह लड़ाई थी उन हाज़िरी बाबू सुपरवाइजर व मुंशी बने सरकारी स्टाफ से, जो अभी भी अपने को मालिक ही मानते थे और मजदूरों का हक मारने में आगे रहते थे। यह दोहरी लड़ाई थी। एक थी सफेदपोश कर्मचारियों से उनके शोषण एवं भ्रष्टाचार के खिलाफ और दूसरी भारत सरकार से थी मजदूरों की नियुक्तियों तथा खदाने चालू कराने के लिए। ठेकेदारों व मुंशियों ने चूँकि सब खाते जमा नहीं किए थे, इसलिए सरकार सबको नौकरी देने को तैयार न थी। मुंशी ठेकेदार पैसा लेकर रोज़ खाते बदल रहे थे पुराने नाम हटाकर, नए नाम चढ़ा रहे थे। सरकार भी कोई-न-कोई बहाना बनाकर कम मजदूरों

को बहाल करना चाहती थी।

1973 में जब खदानें सरकारी हो गईं तो सीता-समेत शुकरा के पूरे दंगल और उसके पूरे परिवार को उनके पहचान-पत्र के आधार पर नौकरी मिल गई। सीता के पति को नौकरी नहीं मिली चूँकि वह खदान सरकारी होने से पहले ही भाग गया था। सरस्वतिया को भी नौकरी नहीं मिली, चूँकि उसकी उमर छोटी थी। उसका नाम खाते में नहीं था। यासीन मियाँ के रोकने के बाद भी सीता यूनियन के हर कार्यक्रम में आगे रहने लगी थी और सरकारीकरण के आन्दोलन के समय और बाद में भी वह ग्रामीणों और बचे हुए मजदूरों के रोजगार की लड़ाई में लीडर बन गई थीं। आन्दोलन के दौरान वह और सरस्वतिया, दोनों ही जेल हो आई थीं। झंडा लेकर आगे चलना हो, पुलिस का मुकाबला करना हो या ठेकेदारों को 'गरियाना' (गाली देना) हो तो सीता आगे रहती थी। और तो और, खदान में भी अरखे की नापी में गड़बड़ी हो, काम का अरखा (कार्यस्थल) देने का विवाद हो या कमनी (कमाई) के बँटवारे की लड़ाई हो सीता ने सभी मामले सुलटाने और सुलझाने की क्षमता हासिल कर ली। पुलिस से मुकाबला करने की उसकी हिम्मत ने उसे आदर का पात्र बना दिया था। उसका रुआब स्टाफ मुंशी और ठेकेदारों पर भी था। अब सरकारी मैनेजर भी उससे भय खाते थे।

आठ

बहाली तो हो गई थी पर कई लोग छूट गए थे। कई बार मजदूरों के नामों की लिस्टें जातीं, अपीलें होतीं, घेराव-प्रदर्शन होते। कई-कई बार बहाली होती। अन्तिम बहाली में दो हजार लोगों को सीजनल करार कर बैठा दिया गया था।

उन दिनों ट्रक-लोडरों की लड़ाई काफी ज़ोर पकड़ गई थी। तीन हजार लोग काम से वंचित रह गए थे। यूनियन लड़ रही थी। सरस्वतिया जुम्न मियाँ के साथ अगुआई कर रही थी। साथ में परवतिया, बिगनी और शिष्टो गंझुआइन भी थीं। सीता स्थायी मजदूरों की तरफ से उन कैजुअल ट्रक-लोडरों की बहाली की लड़ाई में साथ थी। यासीन का भाई मोईनुद्दीन भी खूब जोखिम उठाकर काम बन्द कराए हुए था। एक गाड़ी भी लोड होने नहीं दी जाती थी।

शर्मा जी, जो लड़यो कोलियरी का मालिक जैसा ही था, अब यूनियन-लीडर बन गया था और उसने दूसरी यूनियन खड़ी कर ली थी। केदला से तापिन तक किसी ट्रक-लोडर की बहाली नहीं हो पाई थी। लगभग साढ़े तीन हजार मजदूरों को काम व ट्रक-लोडरों की बहाली की माँग थी। सीता को दूसरी यूनियन पर गुस्सा आ रहा था चूँकि वह ट्रक-लोडरों की बहाली की माँग में साथ देने की बजाय प्रबन्धन से मिल कर दलाली कर रही थी और खुल कर सामने नहीं आ रही थी। सीता गरयाती (गाली देती)

“साले जब ठेकेदारवन से लड़ना था तो कोई नेता नहीं आया, तब गुप्ता मैया ही मार खाई। अब खावे-पकावे खातिर सब चोरवन रातों-रात नेता बन गेल हैं! हड़ताल तोड़े के कहत हैं! हमनी सब एक बाप की औलाद हैं, दुई

बाप के नाय। हड़ताल न टूटतै, जब तलक हमर माँग नाय मिलतै!” वह धौड़े-धौड़े जाकर भाषण देती।

मैनेजर साहब यासीन मियाँ को बुलाकर बार-बार टोकते कि वह सीता को काबू में रखे। तब तक स्टाफ भी हमारी यूनियन में आ चुका था, फलस्वरूप यासीन भी मेम्बर बन गया था।

“साब, मेरी बीवी अपने मन की मालिक है। आप ही समझा के देख लो ना!” यासीन रिरिया कर बोलता पर सीता से बात करने की मैनेजर की हिम्मत नहीं होती थी। वह सीता को जानता था। कटखनी गाय की तरह काटने को दौड़ती है। एक दिन ट्रक लदवाने के लिए मैनेजर साहेब खदान पहुँचे, तो दोनों बहनें टाँगी लेकर खड़ी हो गईं “चल भडुए, ऑफिस में बैठ जाके! दखल दिया तो मुंडी काट लेंगे! हमर पेट पर लात मत मार, नहीं तो तोर रोवे वाला भी न मिली!” सीता गुराई थी।

मैनेजर दुबककर वापस आ गया। पुलिस भी डरती थी उन्हें गिरफ्तार करने से।

“फील्ड में सीता तैनात है और हजारीबाग जी.एम. ऑफिस पर बिगनी के साथ दस मजदूर भूख-हड़ताल पर बैठ गए हैं!” जुम्न ने आकर मुझे रपट दी।

“यूनियन ने लिस्टें दे रखी थीं। शर्मा की यूनियन के लोग कम मजदूरों की बहाली पर ही मान गए हैं पर हमारी यूनियन पूरी बहाली के लिए अड़ी हुई है। तापिन नॉर्थ में शर्मा जी प्रबन्धन की तरफदारी कर रहे हैं जिसे लेकर कल हमारे लोगों से शर्मा के लठैतों से मुठभेड़ हुई थी। हमारी अपनी यूनियन के राजपूत नेता जमना सिंह भी उन्हीं से मिल गए हैं। ये सब दामोदर पांडे के ग्रुप के मुंशी लोग मजदूर के खिलाफ हैं। उन्होंने ही कल हम पर गोली भी चलाई थी। कई मजदूर घायल हुए। तापिन में काम चालू हो गया है पर केदला अभी तक अड़ा हुआ है। हमारी यूनियन की प्रबन्धन के साथ मीटिंग तो हुई पर कोई नतीजा नहीं निकला। प्रबन्धन बहाली की चिट्ठी बाँटने पर अड़ गया है। अब हम क्या करें?” रिपोर्ट देते हुए यासीन के भाई जब्बार ने

चिन्ता प्रकट की।

“जिनको चिट्ठी मिलने वाली है, वे चिट्ठी लेने के लिए बेताब हैं। डेढ़ साल की भुखमरी उनकी हिम्मत तोड़ चुकी है।” अवध सरदार ने बताया।

“ये सब पुराने मजदूर हैं। शर्मा जी की यूनियन में तो वही सब हैं जो केदला खदान में कभी काम नहीं किए या जो हड़ताल पर नहीं गए थे। वे भूख से नहीं लड़े। इसलिए वे सभी भी जल्दी चिट्ठी लेना चाहते हैं।” जुम्नन ने जोड़ा।

मैंने मीटिंग बुलवाई। मजदूरों से राय माँगी।

“गुप्ता मैया, अब मजदूर नाय डटते। जेकरा मिल रहल हय, वह नाय छोड़ते। अब डटले पर फूट पड़ जायत। तापिन में काम चालू हो गयल हय। अभी काम शुरू कराओ। फिर दूसर बार सब बचल-खुचल के जुटाय के लड़ाई छेड़ा।” सीता ने राय दी।

अन्य मजदूरों ने भी यही राय दी। जुम्नन काफी निराश था। सरस्वतिया, प्यारी, बिगनी रोने-रोने को थीं। मैं भी भावुक हो गई थी।

पर दूसरा चारा न था। मैंने हताशा को झटक दिया और स्थिति को समझते हुए कहा

“जैसे हालात हैं उसमें संघर्ष तो हमें अब वापस लेना ही होगा। बहाली की चिट्ठी लेते वक्त सतर्क रहना पड़ेगा चूँकि उसमें भी धाँधली का खतरा है। शर्मा और कुछ मुंशी तथा कुछ अफसर मिलकर बहाली कागज़ लूटने की फि राक में हैं। नए लोगों को उकसाया जा रहा है। पुराना मजदूर थका हुआ है। वह और लड़ेगा नहीं।” मैंने मजदूर की मनोभावना को ताड़ते हुए निर्णय दिया।

बहाली की चिट्ठी बंटी। मुंशी, स्टाफ, मैनेजर और शर्मा जी ने मिलजुल कर ढेर अदला-बदली, हेरा-फेरी की और करवाई। इसकी चिट्ठी उसको दिलवाई। सरस्वतिया, परवतिया, प्यारी, बिगनी, शिष्टो अगोरती (देखती) रह गई पर उनका नाम नहीं निकला। बहुत पुराने लोग छूट गए। बहुत-से नए लोग जो खदान का मुँह भी न देखे थे बहाली-चिट्ठी पा गए। अपील की सूची

में से औरतों के नाम तो बिल्कुल ही काट दिए गए थे। कई नाम ऐसे मजदूरों के थे, जिन्हें पहले काम मिल चुका था पर अब पुनः उनका नाम सूची में टाइप होकर आ गया था। ऐसी चिट्ठियाँ जो दूसरी बार आ गई थीं, मुंशी स्टाफ तथा मैनेजर ने स्पैलिंग में थोड़ी हेरा-फेरी कर के ऊँचे दामों पर बेचीं या अपने-अपने लोगों को दे दीं। सैंकड़ों असली मजदूर छूट गए थे। उनमें भारी आक्रोश था। मैं खुद बहुत उदास और हताश थी।

उसी रात पक्का धौड़ा में मीटिंग हुई। सीता का बाप शुकरा, बुधराम, मंगलू, अवध सरदार, दादू राम, रामचन्द्र, पानाबाई, पटेल राम, कीरत, पुनीराम का ससुर बाबूलाल जुटे। पुनीराम, दादूराम की चौतीस और तीन नम्बर खदानों के सभी औरत-मरद काम पा गए थे चूँकि वे खदानें रसीवर से संघर्ष कर हमने पहले ही विभागीय करवा दी थीं। उन खदानों में पहले से ही सब मजदूरों के नाम रिकॉर्ड में दर्ज थे। इसी रिकॉर्ड के आधार पर पहली खेप में ही सभी के नौकरी मिल गई थी। झारखंड के बाबू शिवराम सिंह, केदला के पी.डी. अग्रवाल तथा ज्योडेटिक कोल कम्पनी (रसीवर के आने के बाद पी.डी. अग्रवाल के पैटी ठेकेदारों ने उनसे हटकर अलग से अपनी ज्योडेटिक कोल कम्पनी बना ली थी) ने मजदूरों के रिकॉर्ड ही जमा नहीं किए थे। उन्हें डर था कि रिकॉर्ड जमा करने पर मजदूरों को उनकी भविष्य निधि व बोनस आदि को पिछला बकाया भुगतान करना पड़ेगा। यूनियन द्वारा लड़कर दिलाए गए पहचान-पत्र ही इस समय मजदूरों के लिए वरदान सिद्ध हो रहे थे। ज्योडेटिक कोल कम्पनी ने यूनियन द्वारा हड़ताल कराने के बाद 1971 में सहायक श्रमायुक्त के यहाँ एक समझौता किया था, जिसमें बी-फार्म बनाना तथा बोनस देना और पहचान-पत्र देना भी शामिल था। बी-फार्म बनवाने के बाद उसे मैनेजर से हस्ताक्षरित करवाया गया था। जैसे ही खदान सरकारी होने का ऐलान हुआ था यूनियन ने वह रजिस्टर मैनेजर से छीन कर अपने कब्जे में रख लिया था। रातों-रात ठेकेदारों ने सब हाज़िरी-बहियाँ गायब करनी शुरू कर दी थीं। जहाँ यूनियन नहीं थी वहाँ खदान सरकारी होने के एलान के साथ ही रातों-रात खाते बदल गए। ठेकेदारों ने खुद अपने को और अपने सम्बन्धियों को कोलियरी का स्टाफ

घोषित कर दिया। उन्होंने अपने सम्बन्धियों तथा गाँव से नए लोगों को बुलाकर, पैसे ले-लेकर हाजरी खातों में नए-नए नाम चढ़ा दिए। पुराने मजदूर देखते रह गए।

ऐसे स्टाफ जो पहले ठेकेदार थे, सब वर्मा की यूनियन में चले गए और हमारी यूनियन द्वारा चलाए गए हर आन्दोलन का विरोध करने लगे। उन्हें डर था कि हम उनकी पोल खोल देंगे कि वे स्टाफ नहीं ठेकेदार हैं ताकि उन्हें नौकरी न मिले।

खैर, फिर संघर्ष शुरू हुआ। यासीन का भाई जब्बार और मोईनुद्दीन तथा मेहत्तर राम आदि सबके-सब बहाल नहीं हुए थे। वे सभी छूट गए थे। पर अब मजदूरों की दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ रही थी। एक, प्रबन्धक से छूटे हुए असली मजदूरों और ट्रक-लोडरों को काम दिलाने और उन्हें कैजुअल ठेकेदारी की बजाय स्थाई करवाने की लड़ाई; दूसरी, शर्मा और उसके लठैतों, जो अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए नए मजदूरों को लेकर पुराने मजदूरों पर घातक हमला करते थे के साथ यूनियन के अस्तित्व की लड़ाई। सीता, सरस्वतिया, परवतिया, प्यारी, बिगनी और शिष्टो का दबदबा बढ़ गया था। यासीन मियाँ तक सीता से डरने लगा था। इधर आन्दोलन की तैयारी हो रही थी, उधर जुम्मन ने दारू पीकर हड़ताली की माँ को खूब मारना शुरू कर दिया। हड़ताल के दौरान पैदा होने के कारण जुम्मन ने अपने बेटे का नाम हड़ताली मियाँ ही रख दिया था। साथ-ही-साथ बेलमति से उसका सम्बन्ध भी तूल पकड़ता जाने लगा था। सीता ने जुम्मन को ताकीद करते हुए यूनियन वाली भाषा में सावधान किया। मिली-जुली हिन्दी, जो यूनियन के लोग प्रयोग में लाते हैं में सीता ने कहा

“देख जुम्मन, या तो बेलमति और दारू को छोड़ या यूनियन छोड़! दोनों तू न रख सकतै! देख, यूनियन खत्म हो रहल है तोर चलते। हर तरफ दुश्मन लगल है, यूनियन पर मार पड़ रहल है तोर चलते। हिन्दू-मुसलमान के सवाल उठ गेल है। दंगा करावल के पूरा सामान तैयार हो गेल है। तू चाहे तो अभिये इस्तीफा दे दे। जब मजदूरन के गुस्सा ठंडा पड़ जइते या लड़ाई तेज़ हो जइते,

तो तोहर के अपने ही बुलाय लेब मजदूरन सब ।

अभी तो तू हट जा रास्ते से ।” चौक में मीटिंग बुलाई गई ।

मेरे सामने मजदूरों ने सवाल रखा “या तो जुम्मन, बेलमति और दारू को छोड़े या यूनियन को छोड़े तभी हम यूनियन में रहेंगे ।”

जुम्मन के आगे वही सवाल दुहराया गया ।

“हम ही हट जाते हैं, यूनियन मेरे चलते नहीं टूटेगी ।” जुम्मन ने कहा और यूनियन फूट से बच गई ।

1974 में दो हजार मजदूरों की बहाली हुई थी । उन सब खदानों को, जहाँ ये मजदूर काम पर लगाये गए थे मौसमी (Seasonal) खदान होने का बहाना बना कर । प्रबन्धन ने छः महीने बाद ही काम से बैठा दिया । अब तो मजदूरों में हड़कम्प मच गया । यूनियन के ज्यादातर पुराने सदस्य ही इससे प्रभावित हुए थे । वास्तव में ये खदानें मौसमी नहीं थीं । प्रबन्धन ने मौसमी का बहाना बनाकर मजदूरों की छँटनी करने का तरीका निकाला था ।

मजदूरों की मीटिंग हुई । अबकी बार स्थानीय लीडर में जुम्मन नहीं था । मजदूरों में सवाल उठा

“बिना धाकड़, निडर लीडर हुए लोकल स्तर पर कोलियरी में कौन आन्दोलन चलायेगा? गुप्ताजी को तो सभी जगह जाना होता है पर केदला में अगुआई के लिए कौन रहेगा?”

“जुम्मन तो दारू पीए है फिर बेलमति के घर जाए है । विलासपुरिया तो उसे मुसलमान मानत है, तो अब यही लोग बताए कौन इनमें से आगे आता है?” सीता ने ताना देते हुए कहा ।

मजदूरों में खुसर-पुसर शुरू हो गई ।

“जुम्मन जैसा लड़ाकू लीडर मर्दवन में तो ना है । इसलिए ओहे के बुलाय लिया जाय । अरे ढेर डौका-डौकी, मरद-औरत के आपस में लटपट होत रहत है । फिर जुम्मन भी हमरे जैसन मजदूर ही तो है! हमरे ही माफिक पीता है, वह कोई बाबू थोड़े ही है!” लिखी बोला ।

“अरे बेलमति का डौका भी जुम्मन को बुला के लात रहा । ओकरा से

दारू-मुर्गा ले के खात-पीवत रहा, तो जुम्मन के का दोष है इह मा?" तीजमति चिल्लाई।

“छोड़ही हिन्दू-मुसलमान के सवाल। सब ठेकेदार-मुंशी ही एसन-एसन बात करके मजदूरवन के फोड़त हय, यूनियन को तोड़त हय। हम लोग जुम्मन के घर माय बिठाय कर दस जूता मार के दंड दे सकत हैं, दूसर के नाय। ओकरा ही बुलाय के लाय पड़तै, जे लड़ना है तो। गुप्ताजी के भी लिखकर देय पड़तै, नहीं तो ओहो नाय मानते।” लिखी ने राय दी।

जुम्मन को घर से बुलाकर लाने का फैसला हुआ। मुझे मनाने के लिए सीता, सरस्वतिया और अवध सरदार को जिम्मा दिया गया।

फिर जुम्मन आ गया। उसने बेलमति के घर जाना कम कर दिया था। दारू भी कम कर थी। बन्द तो वह पूरी तरह नहीं कर पाया। बेलमति का प्यार और पत्नी का तिरस्कार वह दारू से भुलाता था।

लोडिंग बंद करवाना सीता और जुम्मन के बाएँ हाथ का काम था। तोपा, तोयरा, कजु, सारूवेड़ा आदि अगल-बगल की सभी की सभी कलिरियाँ अब सरकारी हो चुकी थीं। वहाँ पर भी केदला के कई मजदूर काम पा गए थे। वहाँ हमारी ही यूनियन ने संघर्ष करके सभी ट्रक-लोडरों को सरकारी करवा लिया था। केदला में प्रबन्धन ने ट्रक-लोडिंग केजुअल मजदूरों के ही हाथ में रहने दी थी। उन्हें हटया नहीं था। उन्हें डर था कि एक साथ इतने अधिक मजदूरों के बेरोजगार होने पर कहीं हंगामा न हो जाए। दो हजार मजदूरों की छँटनी से लोडरों की संख्या दुगुनी हो गई और कमाई आधी रह गई चूँकि मजदूर ज्यादा थे ओर लोडिंग के लिये ट्रकों की संख्या कम थी। मजदूरी का रेट बढ़ाने के लिए लड़ाई ज़रूरी हो गई थी, ताकि प्रतिदिन सभी की कमाई स्थायी मजदूरों के बराबर हो सके। खैर, लोडिंग का काम बन्द कराया गया। शर्मा जी के लोगों ने हमारा विरोध किया। परिणाम स्वरूप मजदूरों ने शर्मा का केदला से हो कर गुजरना ही बन्द कर दिया था। बंजी के ग्रामीणों की बहाली का विरोध करने के कारण वह दिन में भी उधर से सड़क पार नहीं कर सकता था। सीता, सरस्वतिया और जुम्मन पर हमलों की सम्भावना बढ़ गई थी। ये सब कभी

अकेले नहीं चलते थे। जुम्मन लाठी साथ रखता था। सीता और सरस्वतिया गुलेल।

यूनियन ने सीता की ड्यूटी चैक-पोस्ट पर लगाई थी। वह अपने धौड़े के लोगों को लेकर दिन-रात अगोरती (पहरा देती)। ट्रक आते ही ढेले चलवाना शुरू कर देती थी। झाड़ियों में बच्चे छिपे रहते। शीशा टूटने पर गाड़ी वाले गाड़ी वापस लेकर भागते। कुछ ट्रक आधे भरकर छोड़ दिए गए थे। वह न आधा कोयला लेकर जा सकते थे, न लदा कोयला अनलोड कर सकते थे, चूँकि उसके लिए मजदूर उपलब्ध न थे। चार-चार दिन हो गए थे ट्रकों को खदान या परेज-बँगला की चैक-पोस्ट पर खड़े हुए पर गाड़ी लोड नहीं हो रही थी। सीता रात को शिष्टों के घर बंजी बस्ती में चली जाती। वहाँ औरतों और बच्चों को केदला जाने वाली सड़क पर गाड़ी रोकने के लिए तैनात करती। कई ट्रकों के चक्कों से हवा निकाल दी जाती थी। बंजी वालों ने रोड पर उल्टी काँटियाँ गाड़ दी थीं। केदला साउथ में ठेकेदारों से प्रभावित वर्मा की यूनियन मजबूत थी। वे लोग लोडिंग करवा रहे थे पर बंजी वाले रास्ते में ही गाड़ियाँ रोक देते थे। पुलिस घर-घर तलाशी लेकर लीडरों को खोज रही थी पर सीता, सरस्वतिया और जुम्मन ने ऐसा सैट कर रखा था कि उन्हें कोई खोज ही न पाए। रोज़ जगह बदल-बदलकर मीटिंग होती। अवध सरदार, पाना बाई, सरस्वतिया, सीता, दादू राम, झारखंड का बिल्लू राजवार, सफीक मियाँ, राज नारायण, सोहराई भुइयों और केदला की प्यारी इस तरीके से योजना बनाते थे कि गाड़ी खदान में घुसने ही न पाए; घुस जाए तो निकलने न पाए।

धनबाद में मालवीयजी तत्कालीन खान-मन्त्री आए तो हमने तीन हजार मजदूरों को लेकर सीता और जुम्मन के नेतृत्व में धनबाद-डाकबँगला में उन्हें जा घेरा। आखिर मुझे बुलाया गया। कमिटी बिठाने का निर्णय हुआ और पंचैती (आर्बिट्रेशन) का फैसला हुआ। आन्दोलन वापस हुआ। मजदूरों ने केस लड़ा। सबकी पुनः बहाली हुई। बंजी के 32 लड़के, भगवान सिंह (मगन सिंह घाटो वाले) तथा पिछली बहाली में बचे 40 लोगों की और 23 स्टाफ की भी नई बहाली हुई। बिगनी, शिष्टो सभी काम पा गई। सरस्वतिया फिर छूट गई

पर वह ट्रक लोडिंग में काम करती रही। उसी में उसे काफी कमाई होने लगी थी। यासीन का भाई जब्बार और मोईनुद्दीन भी नौकरी पा गया था।

यासीन के घर में अब सब कमाने वाले हो गए थे। ट्रक वाले मजदूरों को 1975 में काम से बैठा दिया गया। सीता, सरस्वतिया, जुम्न ने बहुत कोशिश की कि आन्दोलन चले पर स्थायी मजदूर, जिनके लिए ट्रक-लोडर लड़ाई में अगुआई कर प्रबन्धन को झुका चुका था, साथ नहीं दिया। ट्रक-लोडर अकेले पड़ गए। सरस्वतिया, परवतिया अकेली पड़ गईं। मोईन, जब्बार, लालमणि, बिगनी, शिष्टो सब तो काम पा गए थे। सीता बार-बार चोट-खाई शेरनी की तरह दहाड़ती

“साले आपन काम नहीं था तो इन सबसे मदद लिया। इनकर मदद की बारी आई तो जे सब काम पा गेले सभै चुपचाप बैठ गेले है। आज एकता तोड़ोगे तो कल तुमरी भी कोई मदद नाय करब!”

एमरजेंसी लग चुकी थी। मजदूरों में अजब-सी दहशत व्याप्त थी। आन्दोलन तो हुआ पर चल नहीं पाया। स्थायी मजदूर चन्दा देने को तैयार था, पर न काम बन्द करना चाहता था, न जेल जाना। एमरजेंसी के चलते मजदूर एकदम डर-सा गया था। हम लोगों के लाख समझाने पर भी, उसके मन से डर न जाता था। इधर सरकार ने नसबन्दी का अभियान भी तेज़ कर दिया था। इससे भी मजदूरों में बहुत डर व दहशत फैल गई थी। प्रबन्धन को अच्छा मौका हाथ लगा था। वह मजदूरों में सफेदपोशों द्वारा फैलाए इस डर से फायदा उठाने लगा और उनकी जायज माँगों को भी ठुकराने लगा। इधर इंटक के बड़े नेता जो बिहार सरकार के मन्त्री बन गए थे, अपनी गद्दी बरकरार रखने के लिए मजदूरों के हित भूल गए और सरकार की नीतियों के गुणगान करने लगे। मैंने कई बार उनसे बात की। मजदूरों की स्थिति से उन्हें अवगत कराया पर उन्होंने एक कान से सुना, दूसरे से निकाल दिया।

“दीदी! सरकार तो आपन पार्टी की हय, फिर वह हमारी बात काहे नायी सुनती? आपन पार्टी के नेतागण मजदूरवन के डरा देयल हैं। चलो हमनी सब मिल के इन्दरागांधी ठिन चलब। उ तो जनी है। की उ जनी के दुःख नाय

सुनते? हमनी सब पर उकर पार्टी, व उकरी यूनियन के नेता की-की जुल्म कर रहल हैं उसकी रिपोर्ट इन्द्रा गांधी ठिन जाके करबै, तो की ऊ कुछो नाय करतै? इन्द्रा गांधी बोकारो आयल रहल, तो हमनी तो एक सौ ट्रक में जायके भीड़ लगाय देयल रहल। जमशेदपुर में भी संजय गांधी के आए पर हमनी सब भूखे-प्यासे उकरा स्वागत में गेले रहल। तबै भी न सुनते की उ हमर फरियाद? ई कैसन लीडर है दीदी? जे मजदूर उकरा उठाया है, उकरा ही मार रहल है?” सीता मुझसे बार-बार पूछती।

सीता के इन अबोध पर तर्क-संगत सवालोंने का जवाब मेरे पास न था। मैं खुद उसके तर्कों का जवाब नहीं दे पा रही थी।

“कुछ नहीं सुनेंगे वे सब लोग, सीता! उन्हें अपनी गद्दी चाहिए सरकार चाहिए। मजदूर की सरकार थोड़े ही है जो समझेगी! अब लड़े बिना कोई गुजर नहीं।” मैं मन के विद्रोह को इन हल्के शब्दों में व्यक्त करती।

“का पर करूँ सिंगार मोर पिया आंधर? दीदी, हमर घोडा ई भाइग रहल है, तो कैसे अब लड़ब दुश्मन संग! दुबे बाबा भी मंत्री बने पर बदल गेले है। हम आदिवासी तो जंगल में छिपके तीर-गुलेल से शिकार मारे के जानत हैं। शेर बबर के गिरा देत हैं हमनी सब गाछ पे छिप के। अब छिप के लड़ाई लड़ब, ऐसन सोझे (सीधे) न लड़े पारब (सकेंगे)।” सीता ने दिलासा देते हुए कहा।

सीता की बात ठीक लग रही थी।

“हम नहीं लड़ेंगे सीता तो कोई दूसरा इसी तरह लड़ेगा जैसे तू कह रही है। तुम मजदूरों की मीटिंग बुलाकर राय लो, तो दूसरे मोरचे पर सरकार को तंग करके, उधर कोर्ट में केस करके कुछ हासिल करना होगा। सामने से कोर्ट, पीछे से मार दोनों रास्ता अपनाए बिना, ये मन्त्री-बने नेता नहीं मानेंगे। अब से इनकी मीटिंगों में जाना बन्द कर दो, तब इन्हें पता चलेगा कि इनके मन्त्रियों को अब न तो कोई पूछने वाला है न सुनने वाला।” मैंने कहा। हमने कोर्ट में केस दायर करने का फैसला लेकर, तत्काल संघर्ष स्थगित करने का ऐलान कर दिया।

नौ

एक दिन यासीन चुपके से छुट्टी लेकर गाँव गया और निकाह कर नईकी बीवी ले आया। वह सीता के धौड़े में न आकर, अपने पुराने धौड़े में गया, जहाँ उसका भाई रहता था। सीता को खबर हुई। उसको यह खबर सच ही नहीं लग रही थी। वह सरस्वतिया को ले यासीन के पुराने धौड़े में गई। यासीन मियाँ को काटो तो खून नहीं! मुँह से आवाज़ भी न निकल रही थी। वह सीता से आँख न मिला पा रहा था। यासीन की निकाह वाली बीवी भी सीता के आगे अपराध कबूल कर रिरियाकर, उससे माफी माँगती-सी लगी। सीता, जो सबके लिए लड़ती रही थी, आज अपनी लड़ाई हार चुकी थी। पर वह यह भी समझ रही थी कि उसे अभी मजदूरों की बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़नी हैं यासीन के इस मुकद्दमे में वह वादी (पार्टी) भी थी और जज भी! क्या करे सीता? वह सोच में पड़ गई। ‘यासीन को छोड़ दे क्या? तो माँ, बाप और घर-मुहल्ला की बात सच हो जाएगी कि उसने ही गलत कदम उठाया था। उसी के साथ रहे क्या? सीने पर पत्थर रखकर बाँटना पड़ेगा अपनी सौतिन के साथ उसे यासीन को, जिसके प्यार में वह अभी तक सराबोर थी। आखिर सौतिन ले ही आया वह जिसने कहा था

“मैं माझी बन जाऊँगा दूसरी औरत नहीं लाऊँगा।” क्या कमी थी उसमें? यही न कि वह उसकी जात-धर्म की न थी! कितना विश्वास किया था सीता ने उस पर! शायद यासीन ने उस पर कभी विश्वास नहीं किया, तभी तो अपनी जात-बिरादरी की ले आया। “क्या प्रेम से बड़ी जात है? क्या उससे

बड़ा है धर्म? क्या औरत और मरद होना ही जात या धर्म नहीं है?” कई सवाल मथ रहे थे सीता के मन को।

“गुप्ता मैया तो कहती है दो ही जात हैं एक अमीर-गरीब की दूसरी औरत-मरद की। क्या मुसलमान औरत आदिवासी औरत से अलग है? दोनों तो घर में खटती हैं। फिर क्यों लाया यासीन अपने धर्म-जात की औरत? कमाई तो मैं सारी उसे ही दे देती थी। सब जायदाद तो उसी की है। फिर कहाँ से शुरू हुई यह बात? कैसे पता लगे? मैं इसकी तह तक जाना चाहती हूँ। शायद मैं यूनियन के काम में ज्यादा लगी रहती हूँ यासीन को पूरा प्यार नहीं दे पाती, इसलिए वह दूसरी औरत ले आया है? मुझे बताया क्यों नहीं उसने, औरतिया लाने से पहले? मैं उसके लिए कुछ और समय निकाल लेती। मैं भला यूनियन का काम भी कैसे छोड़ सकती हूँ?” सीता अपने से सवाल पूछती।

“कितना भरोसा करते हैं मजदूर मुझ पर! नेताजी भी मुझी पर भरोसा करती हैं। अब आगे बढ़कर पीछे हटना ठीक नहीं होगा। मजदूरों से कितना सम्मान, कितना प्यार मिलता है मुझे! मैनेजर साला भी डरता है मुझसे।” वह मन-ही-मन यह सोचकर मुस्काई। उसे लगा शायद यासीन भी भीतर ही भीतर उसकी शक्ति के कारण उससे डरने लगा है।

“क्या डर के मारे वह अलग हो रहा है?” उसे शंका हुई। पर अब क्या हो सकता है? वह यूनियन का काम छोड़ नहीं सकती।

“क्या उसका घर उजड़ रहा है? कैसेने?” वह मन-ही-मन सवाल करती, फिर उत्तर देती।

“सीने पर पत्थर रख के सह लेब सौतिन के। अब जौन लड़ाई एतन जतन से आगे बढ़ गेल है, ऊ लड़ाई से पाछे नाय हटब, अब हमनी! हमनी के भरोसा पर हैं सभै मजदूरवन।” उसने निश्चय किया। इसी निश्चय के साथ उसने फैसला सुना डाला

“अच्छा तो आज तू आपन जात-धर्म के महारू बना लायल है। चल ले आयल है, तो अब का होई! अच्छा काम तो तू न कर ले है पर जे हो गेल हो गेल। अब दोनों प्राणी घर चला, घर सम्भार। हमनी दोनों बहिन बन के

रहब। हमर के तो बाहर-भीतर दोनों सम्भारे के है। यूनियन भी देखे के है। चल बाल-बुतरू के तू पाल-पोस। हम दोनों जन खट के घर भरब।”

सीता ने यासीन और उसकी नव-ब्याहता अपनी सौतन को सम्बोधित करते हुए कहा। सीता उन दोनों को अपने ही झोंपड़े में ले आई। छोटकी का बक्सा भी अपने माथे पर उठा ले आई, जैसे कोई माँ अपने बच्चों का समान ढो ले-आ रही हो।

सीता को पूरे दिन थे। खटना कठिन हो रहा था। एक दिन वह काम पर भी नहीं जा पाई थी। साँझ को दर्द शुरू हो गया। यासीन की दूसरी पत्नी सँभाल रही थी। रात दो बजे बच्चा हुआ। सीता की माँ ने दंगल वालों को हाँक दी “लड़का हुआ है” का शोर सब धौड़ों में गूँज गया। नगाड़ा लेकर शुकरा कूद-कूद बजाने लगा। बड़े दिनों बाद घर में लड़का पैदा हुआ था। सब खुश थे। सीता भी खुश थी। पर यासीन मियाँ को तो जैसे काठ ही मार गया था। खुश होने के बदले वह भीषण चिन्ता में डूब गया। छोटकी भीतर-ही-भीतर जल उठी थी। सीता ने यासीन को देखा गमगीन चिन्तित चेहरा।

“इकरा के तो खुश होवे के चाही। पर ई का? इ तो ऐसन लगे है जैसे इकरा बाप मरा गेल है, जैसे गेहुँअन साँप (कोबरा) डस लेले हो इकरा।”

सीता सोच में पड़ गई। उसके मन में दबा हुआ शंका-बीज फिर अंकुरया। वह मन मारकर रह गई। वह अपने बेटे को देखकर खुशी से भर उठी थी पर यासीन के चेहरे को देखते ही जैसे उसकी खुशी पर छाई (राख) की परत पड़ गई। उसे लगा धुआँ छोड़ती हुई कोई डीजल गाड़ी उसके पास से निकल गई हो और उसकी आँखों और देह को धुआँ-धुआँ कर गई हो। जैसे कोयले की लहकती भट्ठी में कच्चा कोयला डाल दिया हो, जो धुआँ-धुआँ कर, घर भी काला कर रहा है, आँख भी फोड़ रहा है।

लड़के का नाम रखा सुनील। शहरी नाम चुन रखा था सीता ने। उसने आदिवासियों का नाम नहीं रखा, जो वर्ष, दिन या महीने के नाम पर होते हैं। अभी सीता छुतके में ही बैठी थी पर खटने वाले मजदूर कहाँ इतना रख-रखाव या, परहेज़ रख सकते हैं? उनमें छुतका वगैरह ज्यादा दिन नहीं चल सकता।

कानून के अनुसार 21 की मैटरनिटी लीव (छुट्टी) के दिनों के बाद तो फिर खदान में खटने जाना ही होता है। तीन हफ्ता जन्म से पहले और तीन हफ्ता जन्म के बाद की सवैतनिक छुट्टी का नियम है। पर कहाँ कौन नियम निभाता था? मैटरनिटी बैसेफिट का पैसा भी बिना घूस दिए नहीं मिलता था। ऐसे तो जब खदान सरकारी नहीं हुई थी, कामिनें सातवें दिन ही पीठ पीछे बच्चा बाँधकर काम पर खटने चली जाती थीं। तब मैटरनिटी बैसेफिट तो क्या, ठीकेदार बिना वेतन की छुट्टी भी नहीं देता था। फट से बच्चा जनने वाली की जगह दूसरी कामिन बहाल कर देता था। उसकी माँ तो तीसरे ही दिन उसे पीठ पर बाँधकर सड़क पर खटने चली गई थी। कौन खिलाता, अगर वह नहीं खटती? दिन में खटा, रात को खाया। दिन में काम नहीं मिला तो रात को उपासे रहे। अगले दिन बिना खाए ही काम पर जाएँ। आज भी सड़क और बिल्डिंग का मजदूर दिन के नाश्ते के लिये जो पैसा मिलता है उसी से सब्र कर दिन-भर कड़ी मेहनत करता है। देहात में तो नाश्ता पहले खिलाकर कामिया को किसान खेत में उतारता है। अब तो ढेर सारे कानून बन गए थे ना, जिन्हें कोई जानता भी न था, फिर लागू होने का सवाल ही कहाँ उठता? कहते हैं तब देश का विकास हो रहा था! तरक्की हो रही थी न! नई दुनिया, नया देश बन रहा था! इसलिए बिना खटे कोई पैसा नहीं, कोई खाना नहीं। बच्चे जनने का काम तो निजी खुशी की बात थी पर ठेकेदार को तो गर्भवति कामिन को देख कर फिकर लग जाती थी उसके काम का हरजा जो हो जाने का डर था। खैर, अब समय बदल रहा था। मजदूर एकता कर रहा था। यूनियन बन गई थी। 'ठेकेदारवा' डरता था। अब तो खदान भी सरकारी है! 'देर-सबेर तो लड़कर मजदूर सब हक ले ही लेंगे।' बच्चे को दूध 'पियाते-पियाते' सीता सोच रही थी।

“क्या सोच रही हे रे दीदी? लो भात खा लो!” यासीन की दूसरी बीवी ने सीता को दाल-तरकारी और भात की थाली परोसते हुए कहा।

यासीन मियाँ ने भात को देखा, फिर अपनी बीवी को। दोनों के होंठों पर एक अनदेखी कृटिल-सी मुस्कान फैल गई।

“धर दे हेने (यहीं), अभी मन नाय हय। तनी देर बाद खाय लेब।”
सीता ने कहा।

“फिर ठंडा हो जाएगा न!”

“होवे दे।”

ज्यों-ज्यों खाना ठंडा हो रहा था यासीन और उसकी बीवी के चेहरे का रंग भी बदल रहा था। उधर भात का रंग भी बदल रहा था। भात हल्का-सा हरापन पकड़ रहा था। यासीन और उसकी बीवी का गेहुँआ रंग सफेद होते जा रहा था। भात का रंग गहरा हरा हो गया था। अब यासीन और उसकी ‘नयकी’ के चेहरे की सफेदी पर एक स्याही-सी पुतने लगी थी। सीता खाने के लिए उठी। यासीन का चेहरा पीला पड़ गया। वह धौड़े से बाहर निकल गया। एक कुत्ता बैठा था द्वार पर, जिसे सीता खाने से पहले रोज़ खिलाती थी। यासीन ने उसे लात लगाई, वह चबूतरे पर जा बैठा। यासीन की बीवी ने जब थाली सीता के आगे बढ़ाई थी, तो उसका हाथ काँप गया था पर सीता कुछ जान न पाई थी। कूँ-कूँ करते हुए कुत्ता अंदर आ गया था। सीता को भात में कुछ हरा-हरा-सा नज़र आया पर रोज़ की तरह उसने थोड़ा भात ‘कुतवा’ के आगे डाल दिया। भात खाते ही कुतवा जोर से चिल्लाया और गिर गया। भात सीता के होंठों से छूता-छूता रुक गया।

यासीन की बीवी कुत्ते को गिरते देख अन्दर के कमरे में भाग गई। सीता कुछ देर के लिए भौंचक! सन्न हो गई थी वह! उसने थाली का भात कमरे में पटककर सुनील को पीठ से बाँधा और पास में ही पड़ा एक डंडा उठाया। यासीन की बीवी अन्दर घुस गई थी। सीता ने उसे कुंडी लगाकर अन्दर बन्द कर दिया और बाहर धड़ाधड़ यासीन की पीठ पर चार-पाँच डंडे जड़ दिए थे।

“साले भड़ुए, दाढ़ी-जार...जा, अपनी जोरू के ले जा! जा साले हमर घर से बाहर! आपन सब कमाई हम तोर पर ही झोंक देयल है और तू दोनों जन हमर के जहर खिलाय रहल? एही बदला चुकाय है हमर जिन्दगी-भर सेवा के?” फिर पास पड़ा जूता उठाकर तड़ातड़ चार-पाँच जूता यासीन मियाँ के सर पर जड़ दिया और फिर यासीन मियाँ को चबूतरे पर से उठा कर नीचे पटक

दिया। पता नहीं उसमें इतनी शक्ति कहाँ से आ गई थी? आसपास लोग उसे पकड़ रहे थे, पर वह काबू में न आ रही थी? वह अन्दर गई। यासीन की बीवी का झोंटा पकड़कर उसे धकिया कर यासीन पर गिराते हुए, कसकर एक लात मारी और कहा

“हम तो बक्सा आपन माथा पर ढोय के, बहन बनाय के, घर में रहे के लाइल हलियो कि दोनों बहन मिलके रहबे, कमाइबे। तू गीदरवन के देखबे, हम घर-बार देखबे। हरामजादी, जो अब ई तोहरा ही मरद हय। ई हमरा कुछ नखे अब। तोहनी मिलके आज हमर के मराय देते (मार देते)। हमर बेटा माय बिन मर जयतै। हमरी बेटियन (बेटियाँ) के का जाने का करतलाय (करते) तोहिन दोनों मिल के?”

पाँच-सात झापड़ लगाते हुए सीता उन दोनों को चबूतरे से उठाकर, उस टोले से बाहर कर आई। फिर बाहर चबूतरे पर बैठकर देर तक गरियाती रही। जो मुँह में आया छोटी से लेकर बड़ी-बड़ी गालियाँ दे डालीं। फिर बेटे को पीठ से खोलकर छाती से लगा कर रोने लगी। मजदूर जमा हो गए थे। किसी ने भात को थाने में जमा करने की राय दी, किसी ने पंचायत में, पर सीता ने मना कर दिया। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी थी।

“छोड़ो! थाना-पुलिस नाय होते। हमेई थानेदार बनवै अब। सरवा (साले) के उमर-भर कमाय-खिलाय देलिये। अब बेटा भैले तो डराय गेले कि जमीन-जैदाद में हिस्सा ले लेते। बेटा भैले तो कुछ नाय बोलले। अब हम इकरा बतैबे कि आदिवासी जनी के ठगे का मतलब का होत है? अब कोर्ट में फैसला होते! ई सरवा को पाई-पाई जोड़ के देवे पड़तै। देखिहा हमर बेटा बड़ा होय के सब जमीन और ट्रक एकरा से ले लेतै। कोलियरी में एकरा जीना न हराम कर देबे तो हमर नाम सीता नाय! इकरा के जिन्दा रख के मारब!”

“अरे सीताजी तो पति की खातिर वनवास चली गई थी!” किसी ने बोली मारी थी। सीता ने आव देखा न ताव, झट से कूद पड़ी और उसे जमीन पर पटक दिया

“साले, हमरा रामायण पढ़ाए है! उ सारे के राम कहे है जो दूसरी औरत

बनाया लेले! रामजी ते दूसर ब्याह नाय करले। पर जायदे! हम ऊ सीताजी नाय है, जो बन में चल जायब। हम तो एही साले के बन में भेज देब। कैसन दूसर शादी करके नौकरी में रह जयतै ई हमनी देखबै?’ सीता पटकनी खाए पहलवान-सी गुराई।

सीता के दंगल वाले और उसके माँ-बाप और अन्य मजदूर जुट गए। मजदूर सीता के प्रति हमदर्दी जताते हुए यासीन को सबक सिखाने का उपाय बताने लगे। डॉक्टर महन्ती जिसने बच्चा पैदा कराया था, को खबर हुई तो वह यूनियन के नेता गोबर्धन को लेकर उसके धौड़े आए। तब तक यासीन और उसकी बीवी को घर से निकाला जा चुका था।

“इस बार मैटरनिटी बेंनेफिट का फॉर्म भरा था या नहीं? डॉक्टर ने सीता से पूछा था।

“इस बार मत चूकना सीता! फार्म भरवा लेना, नहीं तो कहीं की न रहेगी तू। कोई प्रमाण भी नहीं रहेगा। बेटे के बाप का नाम भरवा लो और मैटरनिटी छुट्टी का अग्रिम पैसा लेकर घर बैठो। यासीन की नीयत ठीक नहीं दिखती। तुम बच्चा पैदा होने के दिन तक खटती रही हो। बाद वाली छुट्टी बाकी है, मिल जाएगी।” डाक्टर ने ताकीद दी।

“ठीक है डॉक्टर बाबू, कल तक फार्म भरा जइतै। अभिय तो आफिस बन्द हो गेले।” सीता ने विश्वास से भरकर उत्तर दिया।

अगले दिन वह भोरे उठी। ‘बचवा’ को पीठ से बाँधा और दफ्तर खुलने के दस मिनट पहले ही जाकर बाहर सीढ़ियों पर बैठकर इन्तजार करने लगी। मैनेजर और बाबू लोग आने लगे। वह जानती थी स्टाफ यासीन मियाँ की तरफदारी करेगा और मैनेजर चुप रहेगा।

“सरवा डरपोक हय...उ का न्याय कर सकत है? ज्यादा-से-ज्यादा बोलेगा ‘इंक्वारी करेंगे तब फैसला होइब।’ पर आज तो सब-कुछ एके साथ फैनल (फाइनल) करवाय के ही कागज ले जाय के है।”

सीता मन-ही-मन सोच चुकी थी कि क्या करना है। जैसे ही मैनेजर दफ्तर में दाखिल हुआ, सीता भी, बच्चा पीठ पर बाँधे, टाँगी कन्धे पर रखे

पीछे-पीछे जा पहुँची। वह बिना कहे मैनेजर के सामने कुर्सी खींचकर मैनेजर के बैठने से पहले खुद बैठ गई।

“बैठ मैनेजर बाबू, बैठ!” सीता बोली, जैसे वही खुद मैनेजर हो।

फिर टाँगी टेबुल पर अपने सामने रख दी!

“मेरा मैटरनिटी बेंनेफिट का फार्म भर दे मैनेजर बाबू और छुट्टी का पैसा एडवांस दे दे। डॉक्टर साहब लिख देले है, औहे घर आकर पैदा करायल है बचवा।”

उसने डॉक्टर का पुर्जा आगे बढ़ाते हुए कहा “लिखिये बाप का नाम यासीन मियाँ, मुंशी केदला नार्थ!” सीता ने आदेश देते हुए कहा।

“पहले इंकवारी कर लें यासीन से पूछ तो लें, तब।” मैनेजर बोला।

पीछे से किसी की दबी-सी हँसी की आवाज़ सीता ने सुनी। सीता का खून खौल गया। वह पलटी।

“टाँगी देखत है न? अभी पजा के (तेज़ कराके) लायल है। काट के रख देब! हमर के मरे का डर नाय। साले, तोर जोरू विधवा होय के रोवेगी तोर बाल-बुतरू बिलखतै।”

“इतना गुस्सा काहे करती हो सीता?” बगल में खड़े वीर सिंह बाबू ने बीच-बचाव करते हुए कहा।

“वीर सिंह बाबू को ही बाप बना दे अपने बेटवा का, इसके पास तो है ही एक रखनी, एक और सही।” पीछे से बिल-क्लर्क भगीरथ बाबू ने हिटकारी मारते हुए कहा।

सीता से रहा न गया। भगीरथ का गट्टा पकड़ लिया।

“ठहर साले रखनी वाले दोगले! घर पर जोरू रखते हो, कोलरी में रखनी। दोनों हाथ में लड्डू! सब रखनियों की औलाद को गछवा कर जैदाद में हिस्सा न दिलवाय दिया तो हमर नाम सीता नाय! एक-एक की मुंडी काट दूँगी! तब मज़ा आएगा ‘रखनी’ रखने का।”

और ना-ना हाँ-हाँ करते हुए सीता ने एक थाप दे ही दी भगीरथ बाबू को। सीता जब गुस्से में होती है तो हिन्दी में बोलने लगती है।

मैनेजर भीतर तक डर गया ।

“जाँच करके फार्म भरा दूँगा । कल ले जाना ।” वह बोला ।

“किस बात की जाँच मनीजर साहब? तोरू जोरू के बच्चा जना, तो जी. एम.ने जाँच करवाई थी? स्कूलवा में तोर बेटा के बप्पा के नाम पर तोर नाम लिखाया तो क्या मास्टर ने जाँच करवाई थी तोर जोरू की? ये मुंशी बाबू लोग का फार्म भरता है तो कोई जाँच करता है? ई दू कानून कैसन? माय ना जानेगी बाप के है? बाप साला तो दस जगह मुँह मारता है बीहन छीटे फिरता है खेते-खेत । ई तो माय है जै खेत में बीज धारण कर फसल पैदा करे है । भर मोर फार्म! अभी कर आपन सैन (साइन) ई पर! काहै इ रकम ताक रहल है रे मोर तरफ? भर साले, नहीं तो आज टाँगी फैसला कर देतै । जाँचो कर लेगी मोर टाँगी । हाँ...आ...आ ।” सीता ने फार्म मैनेजर के आगे पटककर रखते हुए कहा ।

सीता का फॉर्म उसी समय भर दिया गया । चुपके से उठकर भगीरथ बाबू बिल भी बनाकर ले आया । मेटरनिटी बाबू तिवारीजी ने छुट्टी का अग्रिम भुगतान भी कर दिया ।

दस

सीता को पहलौठी बेटी के ब्याह की चिन्ता सताने लगी थी। ऐसे आदिवासियों में 17-18 साल की उमर में ही शादी करते हैं पर सीता की बेटी काफी स्वस्थ और मोटी-ताजी थी। फिर अगल-बगल के महतो गाँव तथा कोलियरी के विलासपुरिया लोगों की मिली-जुली संस्कृति का प्रभाव भी सीता को बेटी की शादी जल्दी 'बनाने' पर मजबूर कर रहा था। कुर्मी महतो तो आज भी तीन-चार साल के बेटा-बेटी का ब्याह कर देते हैं और विलासपुरिया 6-7 वर्ष की उमर के बीच लड़की के लिए वर खोजन के चक्कर में, घर से निकल पड़ते हैं। फिर सीता की बेटी उमर में छोटी होने पर भी देखने में अठारह की लगती थी। 1984 में पार्लियामेंट का चुनाव मैं उम्मीदवार के रूप में हार गई थी और विधान सभा के चुनाव के लिए झारखंड वालों ने तैयारी शुरू कर दी थी। हीरो महतो (मुखिया) भी स्वयं लोकदल से चुनाव लड़ना चाहता था और वह इसीलिए हमारी यूनियन से अलग हो गया था। एम.सी.सी. की यूनियन घाटो में टाटा कम्पनी की वेस्ट बोकारो कोलियरी में पाँव जमा चुकी थी और अब केदला में भी घुसने लगी थी। लोकसभा-चुनाव में उन्होंने मेरे विरुद्ध मोर्चा बनाया था, और सी. पी. आई. और कांग्रेस दोनों को मदद का वायदा कर इन कोलियरियों में घुसने की कोशिश कर रहे थे। वे इस कोलियरी में कहीं न थे। बाहरी-भीतरी का भेद जबरदस्त तरीके से बढ़ाया जा रहा था। मैंने आज तक इस बाहरी भीतरी के बंटवारे को मजदूर और मालिक का संघर्ष चलाकर रोक रखा था। मैंने मजदूरों से किसान-आन्दोलन की नेतृत्वकारी भूमिका अदा करवाकर,

स्थानीय लोगों और विस्थापितों के रोज़गार और पुनर्वास के आन्दोलन में मजदूर-जमात का सहयोग किसानों को दिलवाकर इस भेद-भाव को कभी उभरने तो क्या, उठने तक भी नहीं दिया था।

कोलियरी की भाषा भी मगही, खोरठा, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, नागपुरिया और हिन्दी का मिश्रण हो गई थी। बस, जो जिस प्रान्त का होता उसका लहजा-भर ही अपने प्रान्त का रहता। सब लोग मिली-जुली भाषा ही बोलते थे। सभी जगह के मजदूर कोलियरियों में काम करते हैं, इसलिए कोलियरियों का समाज भी एक मुक्त समाज बन जाता है। ऐसे स्थानों पर अपनी-अपनी संस्कृति को निभाते हुए भी, एक साँझी संस्कृति पनप जाती है। आपस में हँसी-ठट्टा, मज़ाक भी और मधुर रिश्ते भी खूब चलते रहते हैं। केदला कोलियरी में भी चलते हैं। आपस में यौन-सम्बन्ध भी सहजता से स्थापित हो जाते और आज भी हो रहे हैं, भले मात्रा का अन्तर हो। पूरे का पूरा समाज तो पुरुष-प्रधान है ही, भले यहाँ मरदों से अधिक औरतें ही खटती हैं। यहाँ पर औरतों को मरद चुनने और बदलने की काफी छूट है। सती-सावित्री बनकर जीवन भर एक ही मरद के साथ रोते-गाते, पिटते-पिटाते, जुल्म सहकर, भूखे पेट रहकर ज़िन्दगी काटने का मध्यमवर्गीय शोषक गठबन्धन, फाँसी की तरह उनके गले में नहीं पड़ा रहता। वे पुरुष की तरह ही जब मन हो गाँठ खोल कर दूसरे से रिश्ता जोड़ सकती हैं और जोड़ती हैं, भले इसके लिए दोनों जनी-मरद को कोई आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक दंड क्यों न भरना पड़े? आजकल यह रिवाज़ कम हो रहा है। ज्यों-ज्यों मजदूर ज्यादा पैसा पा रहा है, मध्यमवर्गीय मानसिकता का शिकार होते जा रहा है। उसे बदलने के प्रयास न श्रमिक संगठनों ने किए, न राजनीतिक संगठनों ने। औरत होने के नाते अकेला मेरा यह प्रयास दूसरों को पक्षपातपूर्ण लगता था। उसे मजदूरों का पुरुष वर्ग 'मैया का कहत है?' कहकर टाल जाता था।

मुंशी और ठेकेदार के सम्बन्ध प्रायः शोषण, लालच, स्वार्थ और दबाव पर आधारित होते थे। ये लोग प्रायः छोटानागपुर के बाहर के क्षेत्रों आरा, छपरा, बलिया, गया, औरंगाबाद, यूपी, पंजाब, बंगाल के होते थे। कुछ, जो

स्थानीय होते थे, उनके रिश्ते गाँव-घर के नाते जरूरत और जाति के अनुसार बनते, बिगड़ते और बदलते रहते थे। मजदूर मलकट्टों और कामिनों के बीच के संबंध या रिश्ते आपसी सहमति से परस्पर आकर्षण, लगाव, सहयोग या एक-साथ काम करने से होते थे। झारखंडियों ने, जिनके नेतृत्व में स्थानीय लोग कम थे पर भोजपुर, औरंगाबाद, विलासपुर के नौजवानों, छैलों, रंगदारों का दल अधिक होता था, ने शुरू में बाहरी-भीतरी के नाम पर इन स्वाभाविक सम्बन्धों पर भी प्रतिबन्ध लगाना शुरू किया। किसी स्थानीय लड़की को किसी बाहरी मजदूर के साथ देखे जाने पर रात को उसे धौड़े में बुलाकर पूछा जाने लगा था। जवान छैलों की टोली ने तो उन्हें पीटने का सिलसिला ही नहीं बल्कि धन्धा ही बना लिया था। पीटने का यह सिलसिला केदला से अधिक बेरमों में चल पड़ा था।

राँची की आदिवासी महिलाएँ प्रायः अकेले ही काम करने आती थीं। छैलों का यह दल झारखंडी नेता सन्त के नेतृत्व में बाहरी-भीतरी का सवाल उठाकर, इन महिलाओं का काफी भयादोहन और शोषण करता था। एक दहशत-सी फैल गई थी कोलियरी क्षेत्र में खास कर औरतों और प्रेमी युगलों में। ये नेतागण औरतों व लड़कियों को बदमाश व बदचलन कहकर, उनका शोषण गाहे-बगाहे स्वयं भी कर लेते थे। इस क्षेत्र के स्थानीय लोगों के लिए यह एकदम नया हथियार था। कोलियरी में ठेकेदारों, पहलवानों की दादागीरी चलती थी; अपराधियों और सूदखोरों की पठानगीरी भी प्रचलित थी, पर भयादोहन से लोग अनजान थे। कोलियरियाँ सरकारी होने के बाद वही ठेकेदार, पैटी ठेकेदार और पहलवान या तो कोलियरियों में मुंशी, सुपरवाइजर नौकरियों में घुस गए या हाजिरीबाबू की। इन्होंने मजदूर-जमात का अलग तरीके से शोषण शुरू कर दिया। सूदखोरी, दारू की भट्टी, पुलिस और बन्दूक का भय दिखाकर, ये नेता के रूप में उभरने लगे। त्राता का चोला पर रंगदारी की प्रक्रिया, जिसे अपना कर वे कभी जबरन सूद, कभी चन्दा वसूलने लगे। धनबाद-क्षेत्र में ऐसा अधिक था। हजारीबाग की खदानें अनुपाततः नई थीं और यहाँ यूनियन द्वारा की गई लड़ाई के कारण सूदखोर पनप न पाए थे। ऐसे तत्वों

को हमने यूनिशन में घुसने भी नहीं दिया था। इंटक में ऐसे ही लोग हॉवी थे। पर कहते हैं न खरबूजे को देख खरबूजा रंग बदलता है। जिन स्थानीय नवयुवकों और मजदूर नेताओं को लेकर मैंने आन्दोलन आगे बढ़ाया था, उनमें भी मिनी सूरजदेव सिंह बनने की ललक पैदा हो रही थी। मैले कपड़े वाले मजदूर ऐसे सपने नहीं पालते थे। गाँव में वे नौजवान या मजदूरों के वे बेटे, जो कुछ पढ़-लिखकर हकों की लड़ाई समझ गए थे, अपनी क्षमता को आन्दोलन से जुड़ने के चलते पहचान गए थे। उन्होंने अपने हाथ में नेतृत्व तो ले लिया था, पर उसका लाभ वे समाज का नाम लेकर अपने लिए लेने लगे थे। वैसे ही लोग भीतरी और बाहरी की लड़ाई तेज़ कर रहे थे, ताकि अपने समाज में अपनी धाक जमा सकें।

जगह-जगह ट्रकें रोककर पैसा वसूलना और उसका पीने-खाने में उपयोग करना, एक धन्धा बन गया था। जमीन के नाम पर आन्दोलन को बेचने की प्रक्रिया कुछ नेताओं ने शुरू कर दी थी। हम लोग सुप्रीम कोर्ट तक विस्थापितों के विवाद को ले जाकर सी.सी.एल. के विरुद्ध स्टे-ऑर्डर ले आए थे। हम लोग आन्दोलन के बल पर, जब तक नौकरी न मिले, ग्रामीणों की जमीन पर कम्पनी का कब्जा होने नहीं दे रहे थे। ये रंगदार उस आन्दोलन को तोड़ रहे थे और सामूहिक सौदेबाजी की जगह व्यक्तिगत सौदेबाजी करने लगे थे, जिसके चलते गाँव के हरिजन और आदिवासी किसी भी लाभ से वंचित रह जा रहे थे। एक तो दलितों व हरिजनों के नाम जमीन ही नहीं चढ़ी थी खातों में, दूसरे वे ज्यादा खेतीहर या बंधुआ मजदूर होते हैं जो दूसरे के खेतों पर खटते हैं। वे मुखर भी नहीं होते। मुखर लोग अपनी नौकरी सुरक्षित करने के लिए गाँव के हरिजन आदिवासी की जमीन भी अपनी जमीन में जुड़वाकर नौकरी लेने लगे थे।

कोलियरी सरकारी होने के बाद, अगल-बगल के गाँव में बड़ी जातियों की नकल में 'करमा' के पर्व में औरतों के स्वतन्त्र घूमने पर रोक लगाने की कोशिश होने लगी थी। बाहर से आए लोगों की कुत्सित नजरों से, उन्मुक्तता को कामुक नज़रिए से देखने की मानसिकता से बचने के लिए भी, एक मुक्त

समाज को भय और क्षेत्रीयता के नाम पर बाँधने और संकुचित करने का प्रयास चलने लगा था। यह प्रवृत्ति कोयला-क्षेत्र में सरकारीकरण के बाद आई आर्थिक सम्पन्नता के चलते और कुछ कुलीन संस्कृति की नकल के चलते पनपी। इसके अतिरिक्त कुछ भय, कुछ आशंका, कुछ हीन-भावना से उपजा सुपीरियरिटी काम्प्लेक्स भी इस प्रवृत्ति को हवा देता था। कुछ संस्कारवश और कुछ पुरुषपन के दृष्टिकोण के कारण भी यह प्रवृत्ति विकसित हो रही थी। मनुवादी प्रवृत्ति के अनुकरण के चलते सभ्यता और संस्कृति का मिश्रण हो रहा था। फलस्वरूप ऊँची एवं समृद्ध जातियों के धर्म, कर्मकांड और नारी-शोषण की रूढ़िगत प्रवृत्तियों की नकल बढ़ रही थी। अस्मिता की पहचान के नाम पर केवल नारी पर प्रतिबन्ध लग रहा था।

यहाँ भी स्त्री इंसान नहीं, झारखंडियों की सम्पत्ति मानी जा रही थी, जिसका उपयोग वे अपने लिए ही सीमित रखना चाहते थे। उस पर कब्जा जमाने की प्रवृत्ति पनप रही थी, जो इस समाज में पहले या तो थी ही नहीं या कम थी। पुरुष भले दो शादियाँ कर ले पहली पत्नी को बिना सहारा छोड़ दे पर लड़की को इस समाज में अपना साथी चुनने या जोड़ने की स्वाभाविक आजादी थी जो अब समाप्त की जा रही थी। औरत का काम करना छोटानागपुर समाज की संस्कृति का अंग और आर्थिक ढाँचे की नींव है। चूँकि इन क्षेत्रों में औरतें मर्दों से अधिक काम करती हैं। वे पुरुषों से ज्यादा स्टैमिना रखती हैं। नवधनाढ्य झारखंडी लोग भी अब अपनी औरतों को छोटा समझने लगे थे। यहाँ कोयरी और साव औरतें प्रायः बाजार में सब्जी बेचने जाती हैं। इस पर भी कुछ ठेकेदारियों में लगे, पढ़े-लिखे लड़के सवाल उठाने लगे थे। गाँव का किसान तबका और वामपंथी यूनियनों का नेतृत्व, इस नई परागामी मानसिकता का विरोध कर रहा था।

सीता भी इस बदलाव से अछूती न रही थी। कुछ प्रचार का असर, कुछ दबाव, कुछ अहसास, सबने सीता पर असर डाला। सीता की बड़ी बेटी का ब्याह झारखंडी नेता सन्त ने, जो कर्नाटक का एक मशहूर नेक्सेलाइट था, अपने सम्पर्क के एक आदिवासी लड़के से करवा दिया था। लड़का जात का

करमाली ही था और राँची का रहने वाला था। उस अहसान के बदले सीता हमारी यूनिजन छोड़कर उसकी यूनिजन में चली गई। सीता को काबू में लाने के लिए। सन्त ने बड़ी दूर से जाल फेंका था। सीता को सन्त ने अपने झोंपड़े के बगल में झोंपड़ा भी बनवा दिया, जहाँ सन्त जीतना टोंगरी गाँव के ही एक बाबू माझी की लड़की के साथ ब्याह करने के बाद रह रहा था। लड़की के पेट में बच्चा रह गया था, इसलिए सन्त को शादी करनी पड़ी थी। वह माझी नेता धनराज माझी की बहन भी थी और सन्त उससे बचकर निकल नहीं सकता था। पेट में बच्चा रहने की बात उजागर हो चुकी थी, इसलिए शादी के सिवा कोई चारा नहीं था।

फिर शुरू हुआ सीता पर प्रतिबन्ध। तरह-तरह की पाबन्दियाँ लगाई जाने लगीं। इससे बात मत करो, उससे बात मत करो। तरह-तरह के फरमान सीता को मिलते पर सीता न जल्दी मानने वाली थी, न झुकने वाली। उसके मन और मस्तिष्क ने तर्क करना सीख लिया था। अगर सामने वाला उसके सवालों का जवाब न दे पाए तो वह अपने सवालों के जवाब भी खुद ढूँढ़ लेती थी। कह देने-भर से वह हुक्म नहीं मानती थी। उसने अपने बल पर जीना सीख लिया था, फिर वह क्यों किसी नेता की गुलामी करे? वह ठेकेदारों की लड़ाई में और विस्थापितों के संघर्ष में मेरे साथ अगुआई कर चुकी थी। तब सन्त या उसके चले-चाँटे कहीं नहीं दिखते थे। वह जानती थी कि जो औरतें सन्त या उनके किसी साथी के कब्जे में न आतीं, उन पर व्यभिचार का आरोप लगा दिया जाता था। यह अभिजात्य और मध्यम-वर्गीय मानसिकता का औज़ार था। इसका उपयोग तथाकथित निम्न-वर्ग के लोग भी स्त्रियों को वश में लाने या उन से मुक्ति पाने के लिए गाहे-बगाहे कर लिया करते थे। औरतों को बदमाश करार देकर, रात में बुला कर सबके सामने जवाब-तलब किया जाता और फिर सबके सामने पिटाई भी। सीता जानती थी कि उसे भी इसी तरह जलील करने की योजना सन्त बना रहा है पर वह सफल हो नहीं पा रहा। सन्त की पत्नी ही सीता को सन्त की सब योजनाओं से अवगत करवा कर, आगाह कर जाती थी।

हारकर सन्त ने सीता की दुखती रग पकड़ी। सीता के दामाद को बुलाया गया और बताया गया कि जिस लड़की से उसकी शादी आदिवासी कहकर की गई है, वह मियाँ ही की बेटी है; सीता ने उसे धोखा दिया है। बस, दामाद लड़की को लेकर आ धमका और धोखा देने के बदले में हर्जाना माँगने लगा। यह समाज दण्ड-विधान पर बहुत विश्वास रखता है। समाज की बात थी वह भी आदिवासी समाज की। दूसरे कैसे दखल देते? फिर भी खीरो महतो मुखिया को बुलाया गया। मुखिया और सन्त ने मिलकर सीता को पाँच हजार रुपए दंड लगाया। सीता को कर्ज लेकर रकम भरनी पड़ी। सब लिखा-पढ़ी में हुआ। लड़की को वापस सीता के घर भेज दिया गया। हालाँकि सीता लड़की को दामाद के साथ रखने की जिद पर अड़ी थी पर हर रोज़ मार खा-खाकर तंग आई बेटी ने ही दामाद के साथ जाने से इंकार कर दिया। अब जब भी सन्त के पास पैसा घटता, वह दामाद को बुलाकर सीता को धमकी दिलवाता। दामाद कुछ पैसा ऐंठ कर ले जाता तो सन्त भी उसमें से कुछ हिस्सा 'झींठ' लेता।

सन्त ने ठेकेदारी मजदूरों में अपना प्रभाव धनराज माझी के माध्यम से जमा लिया था। केदला का मुखिया खीरू महतो जो हमारी यूनियन में था, पांडे और मंडल को लेकर उन मजदूरों के एक हिस्से को अपने प्रभाव में ला चुका था पर उन दोनों की वास्तविक लड़ाई मजदूरों की लड़ाई न रहकर, ठेकेदारों से ठेका और पैसे ऐंठना हो गई थी। मुझे इस बारे में कुछ भनक लगी। मैंने हस्तक्षेप करने की चेष्टा की पर नीचे स्तर पर दोनों इतने मिल गए थे कि उन्हें निकालने के सिवा मेरे पास दूसरा विकल्प न था।

मैं चुनाव हार गई थी। ठेकेदारी में कोलियरी से वाशरी में कोयला ले-जाने के लिए कंवेयर बैल्ट (ढुलाई के लिए पट्टा) बन रही थी। बसंतपुर में 101 लोगों को नौकरियाँ दिलाने के वायदे के बाद ही हमने तीन बरस के संघर्ष का बाद ही वाशरी बनने देना शुरू की थी। सब स्थानीय कैडर, जिन्हें हम आन्दोलन में सामने लाए थे, अब अपने-अपने लोगों और सम्बन्धियों को पैसा लेकर नौकरियाँ दिलाने के चक्कर में पड़ गए थे। बसन्तपुर के करमाली, गँझू और चमार या गरीब महतो नौकरी से अलग रखे जा रहे थे। खुशीलाल, खीरो

महतो आदि हमारा साथ छोड़ चुके थे। हमारे साथ मजदूर थे जनता थी पर कैडर अलग हो गया था। मजदूर कैडर साथ था पर वह सीधा-सादा था। मांग करना, संघर्ष करना तो वह जानता था पर समझौता टेबल पर वार्ता के गुरों से अनजान था। सीता जो स्थानीय की लड़ाई में आगे थी, अब हमारी यूनियन से अलग हो गई थी। सब नेताओं की आपाधापी देखकर वह भी काफी निराश हो रही थी सब विस्थापित व स्थानीय मजदूर इन नेताओं के खिलाफ अपनी-अपनी शिकायत लेकर पहले उसी के पास जाते थे।

इधर सन्त और धनराज माझी का गुप झारखंड की यूनियन का नेतृत्व कर रहा था और उन्हें स्थायी करवाने का लालच देकर ठेकेदारी मजदूरों पर हावी हो रहा था। टाटा के साथ यह लड़ाई लड़कर हम लोग देख चुके थे कि देश का कानून ठेकेदारी मजदूर के स्थायीकरण करने के विरुद्ध है। उसके वेतन, बोनस, भविष्य-निधि छुट्टी आदि की मांग पर आन्दोलन तो किया जा सकता है पर स्थायीकरण पर नहीं। इसलिए मैं स्थायीकरण की लड़ाई छेड़ने के पक्ष में नहीं थी। उनकी मजदूरी की लड़ाई लड़ी जा सकती थी। यह मैं अच्छी तरह जानती थी कि जब तक हमारे पास राजसत्ता को प्रभावित करने की ताकत न हो तब तक उन्हें विभागीय या सरकारी करवाने की लड़ाई सफल नहीं हो सकती थी। फिर भी लोग कभी-कभी अपने को भ्रम में रखना पसन्द करते हैं। दूसरी तरफ हम विस्थापित होने वाले किसानों की जमीन के बदले नौकरी की लड़ाई भी लड़ रहे थे। हमारी लड़ाई परस्पर-विरोधी होती जा रही थी। अगर विस्थापितों को नौकरी मिलती तो ठेकेदारी केजुअल मजदूर नौकरी से हटा दिये जाते। नौकरियाँ कम थीं, माँगने वाले अनेक थे। मजदूरों को आकर्षित करने के लिए झारखंडियों को कोई लुभावना नारा चाहिए था इसलिए उन्होंने ठेकेदारी केजुअल मजदूरों के स्थायीकरण का नारा दे कर आन्दोलन शुरू कर दिया। खीरो महतो के नेतृत्व में 'दमकिप' (लोकदल को जनता पार्टी से टूटने पर दिया गया नाम) और यूनियन के माध्यम से कुमी लोग ठेकदारों से ठेकेदारी में अपना हिस्सा बांधने की लड़ाई लड़ रहे थे। कुछ कुर्मी लड़के खुशीलाल के नेतृत्व में केदला की बसन्तपुर-वाशरी में पैटी या स्वतन्त्र ठेकेदारियां हासिल

करने में जुट गए थे। कुछ लोग उनके यहाँ मुंशी बनने या अपने-अपने संबंधियों की बहाली हेतु, दलाली करने से भी नहीं चूकते थे। कई तो नौकरियाँ बेच कर पैसा कमाने में होड़ लगा रहे थे। गाँव के भूमिहीन हरिजन व आदिवासी उपेक्षित किये जा रहे थे। उन्हें नौकरियों से भी वंचित रखा जा रहा था। यह नया नेतृत्व उन्हें आतंकित भी कर रहा था। मेरे पास ऐसे स्थानीय नेतृत्व का अत्यन्त अभाव हो गया था, जो पूरा समय गाँव के संघर्ष में दे। हालाँकि हमारा कोलियरी का नेतृत्व काफी सशक्त था।

ऐसे हालात में हमारी यूनियन गाँव से हटकर कोलियरियों में ही सिमटती जा रही थी। केवल अगल-बगल के गाँवों के हरिजन और आदिवासी अभी भी हमारे साथ थे। उनमें भी आई.पी.एफ. घुसने लगा था। ऐसे समय में सन्त की पकड़ कोलियरी के स्थायी मजदूरों में ढीली पड़ गई थी। हम लोग शुरू से ही वहाँ मजबूत थे, भले मजदूर यूनियन बदलते थे और इस यूनियन से उस यूनियन में आते-जाते रहते थे।

महतो और मांझी की लड़ाई को सन्त ने काफी बढ़ा दिया था। वाशरी की बैल्ट के ठेकेदार के यहाँ मजदूरों का एरियर काफी बकाया था। दरअसल सारी लड़ाई इसी पर थी। लड़ाई इस पर भी थी कि उसका भुगतान किसे किया जाए? एक तरफ धनराज मांझी और सन्त था तो दूसरी तरफ खीरो महतो और उसके साथी, मंडल और पांडे थे। इन दोनों दलों की आपस में कई बार नोंक-झोंक हो चुकी थी। मार-पीट की धमकियाँ भी एक-दूसरे को दी जा चुकी थीं। लगभग दो लाख रुपए का भुगतान होना था। मैंने अपनी यूनियन से लिखकर दे दिया था कि मजदूरों का पैसा, मजदूरों के नाम से बैंक में अलग-अलग खाते खोलकर, जिसका जो पैसा बनता हो, बैंक में जमा करवा दिया जाए। इस प्रकार ठेकेदार को मजदूरों को सरकारी रेट से पूरा पैसा देना पड़ता था, जो वह नहीं चाहता था। वह नेताओं को पटाकर कुछ राशि छुड़वा लेना चाहता था। वह खीरो और मंडल को एक-एक मोटरसाइकिल दे भी चुका था, जिसे मंडल लेकर भाग गया था। तना-तनी इतनी बढ़ गई थी कि जब भी किसी का आदमी अकेला मिलता, तो दूसरे दल के लोग उसे पीट देते।

मेरा इन नेताओं पर नियन्त्रण कमज़ोर पड़ता जा रहा था, या यूँ कहें वे यूनियन के अनुशासन से बाहर होकर, किसी भी सीमा तक जाने को तैयार थे। वास्तव में अब त्याग-कुरबानी के बल पर कुछ हासिल करने की ललक खत्म हो चुकी थी। बची थी तो केवल स्वार्थी की टकराहट।

उस दिन धनराज कहीं बाहर से आया था और लड़ाई के मूड में नहीं था। वह घर में रह कर आराम करना चाहता था। धनराज एक ट्रक खरीद चुका था, जिसे सन्त और निखिलेश बाबू मिलकर चलाते थे। सन्त ने आकर धनराज को उकसाया

“तुम्हारी बहन और जोरू को गोली दे रहा है विश्वनाथ महतो।”

“जाय दे, कल देखेंगे।”

“हमेशा लड़ाने की बात काहे ले करता है? अभिये तो आयल है, तनि बैठे दे।” धनराज की जनाना ने कहा।

सीता ने भी टोका “तू अपने काहे नहीं जाता? आज तू जा। जंग जीत के आ।” सन्त सौकी और यादव के बेटा को साथ लेकर आया था। उसने धनराज को ताव पर चढ़ाकर, फरसा-टाँगी देकर उन लोगों के साथ केदला बस्ती की तरफ भेज दिया। हमले की खबर केदला वालों को भी लग गई थी, इसलिए केदला बस्ती के महतो भी नाला-पार इन्तजार में थे। एक महतो ने सुलह की कोशिश भी की पर दोनों तरफ के गरम दल ने किसी की भी नहीं सुनी। बहसा-बहसी लाठी और फरसे के वारों में बदल गई। सन्त पीछे होटल में बैठ गया था सामने नहीं आया। वह कभी सामने आता भी नहीं था। गोली चली पर वार खाली गया। सुलह कराने वाला महतो बुरी तरह घायल हो गया। उधर से सीता कामिनों के साथ काम पर जा रही थी। उसने भागकर धनराज को अलग किया। लहू-लुहान धनराज उसी की गोद में गिर गया। सीता ने उसे पानी पिलाया। धनराज उससे कुछ कहना चाह रहा था पर कह नहीं पाया। वहीं सीता की गोद में ही उसके प्राण निकल गए।

सन्त और धनराज के साथी उसे गिरता देख भाग गए। हत्या के जुर्म के भय से महतो लोग भी भाग गए। सीता दोनों धड़ों को कोसती रही

“देखो न! गाँव-गाँव में ही लड़ाई लगा देले है वह सरवा सन्तवा। ठेकेदारी करे चाहे है! फुकट में मरवा देले है धनराज के। महतो-मांझी मिलके लड़ते तो सबै कुछ मिल जैते। पर इह सरवा आपस में लड़वाता-मरवाता है।”

इस बीच सब जमा हो गए। धनराज की लाश को टोंगरी के माझी लोग पहले अस्पताल ले गए, जिसे वहाँ मृत घोषित कर दिया गया। फिर लड़ाई की तैयारी होने लगी। थाना से पुलिस पहुँच चुकी थी।

घटना के समय मैं रैलीगढ़ा में थी। वहाँ चायबासा के मुंडा, उराँव तथा हजारीबाग के भुइयों, गँझू आदि ट्रक-लोडरों में भयंकर लड़ाई चल रही थी। वहाँ ट्रक लोडिंग लोडिंग को लेकर भी मुकाबला एम.सी.सी. से ही था, जो चायबासा के उन सब आदिवासियों को बाहरी कहकर भगाना चाहते थे। वह केवल अगल-बगल के गाँव के महतो को ही स्थानीय करार दे रहे थे। वहाँ भी कुछ मुखर लड़के खुद को मुंशी घोषित कर हर ट्रक पर ट्रक वाले से 50 से 100 रुपए रंगदारी ले लेते थे और मजदूरों की संख्या बढ़ जाने के कारण वे उन्हें बारी-बारी काम देने लगे थे। इस प्रकार उन्होंने हर रोज़ काम बांटने का जिम्मा खुद से ही संभाल लिया था। मजदूर बढ़ जाने के कारण दंगल में मजदूरों की संख्या अधिक हो गई थी फलतः उनकी कमाई भी 40-50 रु. रोज से घटकर 10-15 रु. प्रति रोज हो गई थी। बिना काम किए ही कुछ लड़कों ने प्रति ट्रक 100 रु. रंगदारी लेकर, तीन महीने में ही इस नाजायज कमाई से ट्रक खरीद लिए थे। मजदूरों को वे बाहरी-भीतरी और जाति के नाम पर लड़ाते रहते थे ताकि उनकी पूछ बनी रहे।

रैलीगढ़ा में मेरे पास विश्वनाथ का बाप हराधन महतो मदद के लिए पहुँचा था। मैंने मदद करने से इंकार कर दिया था क्योंकि वह एक आदिवासी की हत्या का मामला था। मुझे आदिवासी के हत्यारे दल का साथ देना उचित नहीं लगा। भले ही मरने वाले दल के लोग हमारी यूनियन के विरोधी थे। दूसरे यह मजदूरों के हित की लड़ाई नहीं थी, ठेकेदारी के भुगतान के बँटवारे की लड़ाई थी। उधर मर्डर-केस के बाद सन्त का दल भी दुबक गया था। अब उसे चन्दा भी नहीं मिल रहा था। सीता जगह-जगह उसका भंडाफोड़ कर रही थी।

सीता कहती “सन्त ने धनराज को अपने रास्ते से हटाने के लिए मरवा दिया है। पहले उसकी बहन को रख लिया, अब उसकी जोरू को भी रख लेगा और देखना एक दिन वह उसका ट्रक भी हड़प लेगा।”

लोगों को सीता की बात सच और उसका तर्क सही और संगत लग रहा था। सीता को चुप कराने हेतु सन्त ने सीता के दामाद को बुलवाकर, कुछ लड़कों के साथ रात में उसके घर पर हमले की योजना बनाई, पर सन्त की पत्नी ने सुबह ही जाकर सीता को बाल-बच्चे लेकर खिसक जाने की राय दे दी थी। सीता, घर का सारा सामान छोड़कर रात में लिखी राम के घर जा पहुँची।

“दरवाजा खोल लिखी वे लोग मुझे मार डालेंगे। मुझे गुप्ता मैया के पास लिवा ले चला।”

रात में सीता का धौड़ा तोड़-फोड़कर गिरा दिया गया। सामान लूट लिया गया। विलासपुरिया ने मीटिंग कर अपने धौड़ों के बगल में ही सीता का धौड़ा भी बनवा दिया। सीता हमारी यूनियन में फिर आ गई और उसने पुनः पुराने तरीके से नेतृत्व सँभाल लिया। खदान में अरखों (कार्य-स्थलों) की नापी कराना और हाज़िरी बाबू पर नज़र रखना उसके जिम्मे था। हाज़िरी बाबू घूस लेकर बिना काम पर आने वाले मलकट्टों और कामिनों की भी हाज़िरी लगाता था। वह जिनसे घूस ले लेता था उन्हें देर-सबेर होने पर आउट नहीं करता था। जो मजदूर घूस न दे, उसे तो दिशा-मैदान तक की छुट्टी भी नहीं देता था। कामिनों को अपने दुधमुँहे बच्चों को दूध पिलाने जाने पर ‘आउट’ कर उनकी हाज़िरी काट देता था। सीता को खबर होते ही वह छुट्टी दिलाने पहुँच जाती या कटी हुई हाज़िरी लगवाने के लिए झंझट करती। सीता के आने के बाद यूनियन की सदस्यता बढ़ने लगी, खासकर महिलाओं की।

सन्त को यह सब नागवार गुजरता था। रास्ते में सीता मिल जाती तो उसे वह ‘रंडी’, ‘वेश्या’ तक कह डालता। सीता उलटकर उसे दस गाली देती, पर चुप न रहती। सन्त ने एक दिन उसके घर पर (पक्का सैन्टर के धौड़े वाले घर पर) हमले की योजना बनाई। सन्त की पत्नी ने उसे आगाह किया। इस बार सन्त ने सीता के दामाद को आगे रखा। सीता तैयार थी टाँगी लेकर।

सुनील अभी छोटा था। सीता ने उसे कमर से बाँध लिया और अगल-बगल के औरत-मर्दों को जुटाया। जैसे ही हमलावर आए, सीता ने ललकारा

“साला एक कदम बढ़ते तो टाँगी से काट देबे!”

हमलावर इस चुनौती के लिए तैयार न थे। फिर तो मजदूर चिल्लाने लगे “मारो सालों को! औरत को बेइज्जत करने और लूटने आया है। साले, दिन में आ, अगर मरद है तो! देखो, कोई लौटने न पाए!”

आवाजें गूँज रही थीं। हमलावर जहाँ-तहाँ भागे। कई लोग जिस-किसी के घर में, जहाँ पाया वहीं घुस गए। सीता की आवाज़ रात के सन्नाटे में ललकार कर हमलावरों के हौसले कुचलती मजदूरों के सम्मिलित नारों में बदल गई।

अगले दिन गोवर्धन, लिखी, सीता को लेकर मेरे पास पहुँचे। लोग थाने में खबर करना चाहते थे पर किए न थे। सीता परिवार-समेत दो दिन मेरे पास रही। थाना में रपट लिखाने की बात आते ही सीता कह उठी “नाय मैया नाय! थाना-उना में केस नाय करे होते। थाना तो उकरा से घूस ले लेते, फिन उकराई मदद करते। बस तोहर हाथ हमर माथा पर चाही। हम खुदेई इकरा से बदला ले लेब। इह मामले मा सन्त से यासीन भी मिलल है। केस कराए के होते ते यासीन मियाँ पर कराय दे मैया! ओकरे वेतन से कटके हमर बेटा के पाले खातिर पैसा मिल जाब।”

उसका अर्थ मेन्टेनेंस-केस से था। इस घटना के बारे में सीता का शक यासीन मियाँ पर था।

“इह तो मरते बखत बेचारे धनराज के हमै पानी पिलाय देल। हमरी गोद में ओकरे प्राण छूटले। उकरी बहिन तो आय के हमर के सब बताय देले कि मोर धौड़ा पर रात के हमला होतै। तबे हमनी तैयार हो गेल। नाय तो इह लोग हमरा मारे के प्लान बनाय के आयल रहा। सबै औरतियन के संग ऐसने करते हैं ई लोग। सबै के तंग करे हय। किसी संग हँसते-बोलते देख लियल, ते रात के ओकरा पिटाइयो हो जइत हय। देखो मैया, अब हम आ गेले हैं न, ते सबै जनी मन उकरा छोड़ के हमर यूनियन में आ जायब। खाली भय खायके

उकरा संग हय सभै। बस तोहनी सहारा देवे के तैयार हो जायब तो फिर देखा, सारा केदला पुराना केदला बन जायब।” क्षेत्र में केदला को पुराना केदला बनाना जुझारू आन्दोलन का प्रयाय बन गया था।

सबको ताकीद कर वापस भेज दिया गया। हमले का जवाब हमले से हो, यही तय हुआ, ‘पर पहल हम नहीं करेंगे।’ बचाव में किसी भी हद तक जाना पड़े तो जाया जाय, पर हमलावर बनने का श्रेय उन्हीं को हो। सन्त की पार्टी के नेताओं के पास भी सीता ने लिखवा कर भिजवाया। मैंने भी अपने स्तर पर लिखा। अब सन्त काफी ठंडा पड़ गया था। जब भी मीटिंग में, रैलियों में वह सीता को देखता तभी कहता

“औरतजात होकर मर्दों के साथ मीटिंगों में घूमते लाज नहीं लगती?”

सीता फटाक से जवाब देती “तू आपन जोरू के देख, हमरा के तू गार्जियन न है? बड़ा आया बोले वाला! सरवा भाषण में कुछ बोलत है, पीछे में कुछ। पुलिस से लड़ना हो तो हमनी के आगे कर देत है और लीडर बनना हो तो कहता है हम सब औरतजात हैं। जा साले, हम तो घूमे करब। तोर के लाज लगै है तो तू डूब मर चुल्लुभर पानी मा! नेतागिरी करे वाली औरत के ‘रंडी’ कहत है? पुलिस और मैनेजर के आगे फिर काहे इन ‘रंडियन’ के खड़ी कर देत हय? पुलिस के सामने भी तू काहे ले नाय खड़ा होत है? ज्यादा बक-बक करतै, तो तोहर नेता राय बाबू ठिन (पास) धनबाद जाय के हम शिकायत कर देब।” सीता ने ‘सटाक-सटाक’ जवाब दिया।

शायद धनबाद बुलाकर उसे डाँटा हो उनके नेता ने। इसलिए उसके बाद वह चुप हो गया। सन्त के धौड़े के पास रहने वाली औरतें भी अब सीता को अपना नेता मानने लगीं। यहाँ तक कि धनराज की जनाना भी गाहे-बगाहे सीता से राय लेने लगी। राँची-दंगल ने सीता का लोहा मान लिया था। सन्त के दल के लड़के भी उससे टूट गए थे। मजदूरों ने भी सीता को अपना नेता मान लिया। हमारी ही यूनियन के छोटे मजदूर-नेतागण, अपने हलक के नीचे उसके नेतृत्व को उतार नहीं पा रहे थे, हालाँकि दो-दो हड़तालें सीता ने सँभाली थीं। 1986 की 21 जनवरी की सभी सार्वजनिक क्षेत्रों की हड़ताल और 1987

की 15 अगस्त को भारत-बन्द और 29 अगस्त तक की पाँच-दिवसीय कोयला-मजदूरों की हड़ताल सीता के बलबूते पर हुई थी। सीता ने गोवर्धन, रत्नू, चम्पा, अवध को साथ लेकर धौड़े-धौड़े मीटिंग करना पहले से ही शुरू कर दिया था। कार्यस्थल पर भी वह अपना भाषण जारी रखती थी। इस बार तो मुंशी और बाबू लोगों को भी हड़ताल में उतारने के लिए ही रोज़ बातचीत चल रही थी। वे भी हड़ताल पर जाने का मन बना रहे थे।

“एको पत्ता नहीं हिलने देंगे खदान में, एको छटाँक कोयला न जाए देंगे खदान से बाहर। गाड़ी-घोड़ा नाय चले देंगे। पूरे देश में बन्दी है तो हमनी सब कैसे पीछे रहब? कोयला से तो देश चले है, हमनी तो देश के कलेजा हैं कलेजा। दिल हैं दिल! हमनी बन्द तो देश बन्द! देखो रोज़ जुलूस निकालो, जुलूस देख के ही दलाल लोग हड़क जाहिए। गिरफ्तारी जल्दी नाय देब पर पकड़ाए पर भागे के भी नाय होते। किसी ढँग से लीडर लोग के पाँच दिन, रात-दिन एक कर देयेके है। पुलिस के सामने कोई अकेले नाय पड़े के चाही। जब घूमबे तो आठ-दस के साथ घूमबे।”

सीता सबको मुड़ी-तुड़ी हिन्दी में समझाती रहती। साथियों ने मुझे आश्वस्त किया था कि मुझे हड़ताल के लिए केदला में मेहनत नहीं करनी पड़ेगी।

“गुप्ताजी! आप केदला की फिकर मत करो। यहाँ हम पत्ता नहीं हिलने देंगे। आप बस एक बार सवेरे-शाम या आधी रात अपना चेहरा दिखा जाओ और बाकी हम संभाल लेंगे और जिस जगह, जहाँ-जहाँ जरूरत है वहाँ निफिकर हो के घूमो।”

“खाली झारखंड तनिक देख लेब। होने शर्मा कुछेक मजदूरवन के पीटले है, जेकरा चलते सगरा मजदूर शर्मा के खिलाफ करे खातिर, काम पर उतरे कि जिद कर रहल हय।” सीता ने मेरे कान के पास अपना मुँह ले-जाकर बताया।

मैं सतर्क होकर झारखंड पहुँचीं। योजना-अनुसार सीता को औरतों का जुलूस लेकर 4 टीवी (एक खदान का नाम) खदान में जाना था चूँकि वहाँ इंटक के तीन नेता जो क्रमशः शावल, डोजर और डम्पर ऑपरेटर तो थे, पर कभी

भी ड्यूटी नहीं करते थे, केवल नेतागिरी कर हाज़िरी लगवाकर वेतन उठाते थे, को उस दिन हड़ताल तोड़ने के लिए ड्यूटी पर आकर काम शुरू करना था। बस जैसे ही मशीन की घर्-घर् सुनी, सीता अपना दल लेकर नारे लगाती पहुँची। सब उतनी भीड़ को देखते ही भाग गए। सीता और अवध सरदार ने पुलिस को अपने तर्क से परास्त किया कि “जब कोई काम करना ही नहीं चाहता तो वह इन दलालों को क्यों काम पर आने दिए? ये तो कभी खदान में खटे नहीं!”

कुछ पियक्कड़ लोग जो एक साल से काम पर नहीं आए थे और सस्पेंड थे तथा जिन्हें कोल इंडिया के नियमानुसार नौकरी से हटाने का प्रावधान था, उन्हें भी अपनी पुरानी आदत के अनुसार इंटक वाले प्रबन्धन से साँठ-गाँठ कर, नौकरी का आश्वासन दिलाकर काम पर उतारने की चेष्टा कर रहे थे। हर हड़ताल में वे ऐसा ही करते थे। इस बार सीता की गालियों की बौछार-भरी गरज़ती आवाज़ और बच्चों की पत्थरों की मार के आगे किसी की न चली।

“गुप्ता मैया! झारखंड जाओ, नहीं तो काम चालू हो जाएगा। पारस की जनाना ने खबर भेजी है।” सीता ने मेरे पास खबर भिजवाई।

मैं झारखंड पहुँची तो सचमुच मजदूर काम पर निकल रहा था। हाज़िरी एक जगह लगती थी। सीता गोवर्धन की मोटर-साइकिल पर बैठ मुझसे पहले वहाँ पहुँच चुकी थी।

“जो शर्मा कहेगा हम सब उसका उलट करेंगे गुप्ताजी! उसने मजदूरों को सरेआम पीटा है, वह कैसा नेता है?” मजदूरों ने मुझसे शिकायत की।

“हड़ताल आपके लिए है, शर्माजी के लिए नहीं। उससे हम बाद में निपट लेंगे। अभी तो हमें अपनी लड़ाई लड़नी है न। इसे पहले लड़ो, शर्मा को बाद में हम देख लेंगे।” मैंने कहा।

ग्यारह

पच्छमाहा मजदूर पहले ही शर्मा के कारनामों के खिलाफ इंटक में चले गये थे। ये वही मजदूर थे, जो बाबू शिवराम सिंह की ठेकेदारी के समय एजेंट रामकृपाल सिंह द्वारा उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले से हमारी यूनियन के सदस्यों पर लाठी बरसाने हेतु लाए जाते थे। इन्हें ठेकेदार या कम्पनियाँ गोरखपुर स्थित उनके कैम्प से मँगाती थीं। उनकी कमाई उनके घर पर ही सीधे खदान मालिक या उसका ठेकेदार भेजता था। उनके खाने की व्यवस्था-प्रबन्धन एक मैस में करवाता था। उन पर एक कैम्प-कमांडर भी नियुक्त किया जाता था।

जब हमारी यूनियन वहाँ गई तो सबसे पहले “हमारी कमाई हमारे हाथ में”, नारे के साथ हमने लड़ाई छेड़ दी। हमारी दूसरी लड़ाई थी “कैम्प कमांडर हटाओ अपने भोजन का प्रबन्ध हम खुद करेंगे।” फिर तो सब गोरखपुरी मजदूर कैम्प के अनुशासन से मुक्त हो गए।

इसके बाद बाकी मजदूरों के साथ इनकी मजदूरी बढ़ाने की लड़ाइयाँ भी लड़ी गई। यह मालिक के पहलवान-मजदूरों की जमात थी, जो जी-जान से मजदूरों के हित के लिए उठ खड़ी हुई थी। ये सब-के-सब उत्तर प्रदेश के दलित थे।

जब इनकी लाठी हमारे पक्ष में उठ गई, तो बाबू शिवराम सिंह समझ गए थे कि अब समझौते बिना काम नहीं चलेगा। इसलिए राजा साहब की खदानों के उस पूरे क्षेत्र में सबसे पहला समझौता झारखंड कोलियरी में ही हमारी यूनियन के साथ हुआ था। इन्हीं सब बातों की याद सीता उन्हें दिला

रही थी। उन दिनों की फाकाकशी को याद कर मजदूरों की आँखें भर आई थीं और वह आज की लड़ाई के लिए तैयार हो रहे थे।

“सोए को जगाया जा सके है अमरनाथ भाई, जागल के की रकम जगावेंगे! आप लोग तो जागल हो। फिर सूते के माफिक दिखोगे तो एक दिन भागे के पड़ी, ई फील्ड छोड़ के। अरे जब शिवरामसिंह से नहीं डरे, तो अब ई शर्मा-फर्मा, ई पुलिस-उलिस, ई सरकार-वरकार कौन चीज़ है?” सीता ललकारते हुए बोली।

“आप हम लोगों की पुरानी नेता हैं गुप्ताजी! आपकी बात हम टाल नहीं सकते। आप हमें गलत राह नहीं ले जाएँगी। पर शर्मा को हम सबक सिखाने बख़्त आपको हमारा साथ देना होगा।” मुझे सम्बोधित करते हुए पच्छमाहा मजदूरों ने प्रस्ताव रखा।

“हम सभी मजदूर मिलकर सिखाएँगे उसे सबक। पर अभी तो एकता टूटे से सरकार हमनी के ही सबक सिखा देगी। हमनी सब केदला से आय के तोहनी सब की मदद करब पर अभीय हड़ताल पर सभै जाब।”

सीता ने आगे बढ़कर मेरे मुँह की बात छीनकर मेरी तरफ से उन्हें आश्वासन भी दे दिया। मजदूर अपने धौड़ों में लौट गए। इंटक के प्रमुख कैडर के घर सीता मुझे ले गई, उसने साथ में केदला कोलियरी के पुराने नेता भगवान बाबू को भी ले लिया था।

“ठीक है हम घर चले जाते हैं मजदूरों से कहकर, आपको जो करना हो करें। बस, आप नन्दलाल सिंह को समझा लें।” इंटक में गए पच्छमाहा मजदूरों के नेता राजनारायण ने कहा।

सीता नन्दलाल सिंह को बुला लाई। वह मेरे सामने पड़ने से कतराता था। उसकी नौकरी मैंने ही लगवाई थी।

“देख, तोर भाई पिस्तौल संग पकड़ा गेल, ते गुप्ताजी ही बचा देल। तू जे भी पार्टी में रह, पर मजदूर के लड़ाई में बाधा न दे।” सीता ने एक और अहसान जोड़ते हुए कहा।

नन्दलाल सिंह लौटकर जो अपने डेरा में घुसा तो फिर हड़ताल के बाद

ही निकला। उसने लिखकर प्रबन्धन को भेज दिया था कि उसे मजदूरों ने काम पर नहीं जाने दिया।

सीता की सूझ-बूझ से सब हैरान थे। उस दिन वह झारखंड की नब्ज नहीं टटोलती तो हड़ताल टूट जाती। हड़ताल का चौथा दिन था। प्रबन्धन मशीनों से उत्पादन करने के लिए कटिबद्ध था। केदला भू-गर्भ परियोजना में तो मजदूरों ने आवश्यक सेवाएँ भी चलने नहीं दी थीं। मजदूरों ने प्रबन्धन को कहला भेजा था “इंटक के नेताओं को कहें पानी भरें। आवश्यक सेवाएँ चलाएँ। वह तो कभी काम नहीं करते ना आज करें अब काम।” मजदूरों ने भी हठ ठान ली और अड़ गये। मजदूरों का कहना था “हम लोग तो पानी ढोकर अपने लिए ले आएँगे। इस बार अफसरों को पानी अपने से भरने दो या वे लोग इन लीडरों से पानी भरवाएँ।”

रोज पाँच-पाँच हजार मजदूरों का जुलूस निकलता था और 9 नम्बर से लेकर झारखंड तक जाकर 4 टीवी होकर लौटता था। 15 से लेकर 18 अगस्त को चौथा दिन था। 20 को तो रविवार ही था। पुलिस का विशेष बन्दोबस्त कर के प्रबन्धन नेताओं को अन्दर करवाने यानी जेल भिजवाने की जुगत बैठा रहा था। पुलिस पूरे क्षेत्र का दौरा कर रही थी। सी. पी. आई. के सभी बड़े नेता गिरफ्तार हो चुके थे। अपनी पार्टी में केवल मैं बची थी। प्रबन्धन गोवर्धन, रथू और सीता की गिरफ्तारी की फि राक में था, पर ये लोग कभी अकेले मिलते ही न थे। खीरो महतो के भी कुछ लोग टूट गए थे। उन्हें प्रबन्धन से नौकरी देने का आश्वासन मिल गया था। सीता ने सभी को आगाह कर दिया था। रथू जुलूस लेकर लौटते हुए 4 टी.वी. आया। सीता भी औरतों के दल के साथ आ धमकी। गोवर्धन और एस. एफ. आई. का नेता रमेश लड़कों की टीम को लेकर आ गए थे। चरही से अफसर भी पहुँच गए थे। टेलेक्स पर टेलेक्स आ रहे थे “4 टी. वी. चालू करो!”

दोपहर तक काम चालू नहीं हो सका। सूरज सिर पर चढ़ आया था। लोग प्यास से विह्वल हो रहे थे। जुलूस वाले मजदूरों में से कुछ खाने और कुछ पानी पीने के लिए चल दिए थे। दोनों तरफ शंका का वातावरण घिर रहा था। जब केवल

नेता रह गए तो काम फिर चालू करने के लिए आदेश हुआ। गोवर्धन अपने दल के साथ लपका तो पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर उसका साथ दे रहे साथियों की पिटाई शुरू कर दी। सीता का माय सुमित्रा और सीता से देखा न गया। रमेश के सिर से बहते खून को देखकर, सीता चिल्लाई “पकड़ो सालों को!”

बस, फिर तो सुमित्रा ने हवलदार की वर्दी का बिल्ला नोच डाला। सीता ने बन्दूक छीनकर उसी से दो-चार सिपाहियों को पीट डाला। खदान के ऊपर वाले धौड़ों से मजदूर जुटने शुरू हो गए। लोग जो खदान से थोड़ी दूरी पर थे धौड़ों से निकल पड़े। बिजली की तरह गिरफ्तारी की खबर फैल गई। अवध सरदार मजिस्ट्रेट को तर्क देकर समझाने लगा। गोली चलने की नौबत आ रही थी। गोवर्धन हिरासत में बैठा था, पर उसके दल के लड़के इशारा पाकर सक्रिय थे।

“सबको लेकर भाग जा चाची! मार का बदला मार तो हो ही गया! बन्दूक पटक और जा! अब कोई माय का लाल काम चालू ना करेगा।” सौकी ने चुपके से सीता के कान में कहा।

सीता बन्दूक वहीं पटक वह सभी को लेकर वहाँ से खिसक गई। ग्यारह लोग गिरफ्तार हुए। अवध अपने तर्क पर तर्क देता रहा। काम बन्द हो गया। साँझ हो गई। रात को किसी की हिम्मत न थी कि काम चलाता। कौन जाने किधर से ढेला या तीर आ जाता? सीता ने रात-भर में जगह-जगह माटी-टोपी फिट कर के आवाज़ करने का आदेश दे रखा था ताकि अगले दिन कोई दलाल काम पर न आ सके। सीता कोलियरी के चप्पे-चप्पे और चोर रास्तों से वाकिफ थी। उसे पकड़ना आसान काम न था।

अगले दिन बाल-बच्चों समेत पार्टियों के दायरों से मुक्त हो मजदूरों ने नेताओं की मार और गिरफ्तारी के खिलाफ जमकर जुलूस निकाला। रविवार को डबल पैसा मिलने का लालच भी मजदूरों को न डिगा सका। हड़ताल की कामयाबी का सेहरा सीता के सिर था।

“सीता जैसी दो-तीन औरतें और हो जाएँ, तो केदला पुराने वाला गुप्ताजी का केदला हो जाएगा, जब एक आवाज़ पर दसों हजार लोग जुट जाते थे।” सभी मजदूर कहने लगे थे।

बारह

अब सीता पटना-दिल्ली जाने वाली रैलियों में भी औरत-मर्दों के जत्थे लेकर जाने का दम रखने लगी थी। पटना रैली में जाते समय, गया में वह सी.आर.पी. को चकमा देकर गाड़ी में चढ़ गई थी।

“देख, हमरा टिकट वह डंडे पर हमरा लाल झंडा हय। जब कांग्रेसिया जाय है, तो बिना टिकट जाय है। स्पेशल गाड़ियां चलाय है सरकार उकरा वास्ते। मजदूरवन के भी अब हुक्म भय गेले के सभै दिल्ली जावा। पैसा नाय है, महँगी बहुतै है। तैं भी तो मजदूरे है न! हमनियों भी अपने एही झंडे के टिकट पर जइब।” साफ-साफ कह दिया टी.टी. बाबू से सीता ने। टी. टी. आते और सीता का तर्क सुन कर चुपचाप लौट जाते। कौन मुँह लगता! तर्क भी ठीक था सीता का।

सीता हर लड़ाई में आगे रहती। धरना देना हो, घेराव करना हो, हड़ताल की मीटिंग करानी हो, ट्रक रोकने हो, वह सबसे आगे, बड़े-से डंडे पर बड़का-सा झंडा लगाकर रहती। सीता की बहादुरी के चर्चे पूरे फील्ड में होने लगे थे। प्रोजेक्ट ऑफिसर को भी उससे बात करने में सोचना पड़ता। अब वह उसके तर्कों को ध्यान से सुनते। मुंशी स्टाफ, जो पत्थर माटी में ओवर रिपोर्टिंग करके पैसा मजदूरों के नाम चढ़वाकर, मजदूरों से ही उठवा कर बाद में उनसे लौटवा लेते थे, उसकी खिलाफत अवध सरदार के साथ-साथ, सीता ने भी करनी शुरू कर दी थी। कभी-कभी तो वह शिकायत

करके गलत नापी पकड़वा देती। पर जब सब ही उस चोरी में शामिल हों तो कैसे रुके चोरी? उसकी धमकियों से चोरी कम जरूर हो जाती पर बन्द नहीं हो सकती थी। इसका उसे बड़ा आक्रोश था। वह घूस देकर अपनी हाज़िरी नहीं बनवाती थी। प्रदर्शन में मजदूरों को ले जाती तो खड़ी होकर अपने साथ सबको 'आउट' करवा देती।

“हाज़िरी लगी रहेगी तो मनीजमेंट प्रोडक्सन दिखा देगा। हाज़िरी कटेगी तब न पता चलेगा झूठ-मूठ की कितने मजदूर प्रदर्शन में शामिल रहे। तभी तो मनीजमेंट के पता चलते कि मनीजमेंट की जिद से कितना नुकसान भय गेल। मनीजमेंट ते यूनियन के नीचा दिखावे खातिर और मजदूरों की एकता तोड़े के वास्ते, बिना काम करले ही हाज़िरी बनाय देव और झूठों-मूठों कम्पनी भी चढ़ाय देव प्रोडक्शन दिखावे खातिर! अरे अपनी कमाई एको पाई न कम लेंगे न ज्यादा। हमनी से कसाई की तरह काम लेये के हो तो ले ले, पर हम भी पठान की तरह आपन पैसा वसूल लेंगे। चोरी में बरकत नाय बाबू, मेहनत में सब होतै।” सीता तर्क देती।

सीता का सिक्का सब मानते। पर कहावत है 'घर की मुर्गी दाल बरोबर।' फिर वह औरत है। मजदूर तो उसका नेतृत्व मान रहे थे, पर कार्यकर्ता इसे अपनी हेठी मानते थे। यूनियन में कई लोग थे जो क्रान्ति की बात तो करते थे, पर अपनी संकीर्णताओं और रूढ़िगत मानसिकता की 'कंज' (केंचुल) उतार नहीं पाए थे। सीता को ऊपर के नेतृत्व में, बिहार की केन्द्रीय कमेटी में तो रख लिया गया, था पर जब यूनियन की केन्द्रीय कमेटी के लिए शाखाओं से नाम चुनकर माँगा गया तो मजदूरों ने किसी भी महिला का नाम चुनकर नहीं भेजा। सीता का भी नहीं। सीता इन बारीकियों को नहीं समझती थी। वह तो जानती थी जब जरूरत पड़े, रात हो या तपती दोपहर, उठकर चल देना है। खतरा हो तो मोल लेना है।

मैं तिलमिला उठी थी। कमेटी के वरिष्ठ सदस्यों से राय कर किसी कामिन का नाम चुनने के लिए कहा गया। मजदूरों से पूछा भी गया कि क्या सीता को केन्द्रीय कमेटी में जाने पर उन्हें एतराज हैं?

“नहीं। हमें तो जो लीडरों ने कहा, हमने कर दिया सीता का वे नाम ही नहीं धरे।” सबने एक स्वर में कहा।

काफी दुख हुआ मुझे इतने संघर्षों के बाद भी मजदूर अभी भी अपना निर्णय खुद लेने की स्थिति में नहीं हुए। सीता भी पद के महत्त्व को नहीं समझती थी। खैर, सीता का नाम भेजा गया। कुछ और महिलाओं के नाम भी आए। इसी बीच मैं अपने दिल के इलाज के लिए दिल्ली चली गई। नया परियोजना पदाधिकारी आया था, जो ईमानदारी और जिद दोनों के लिए मशहूर था। सामन्ती प्रवृत्ति के अनुसार कान का कच्चा तो था पर दुराग्रही नहीं था। उसने आते ही चोरी और ओवर-रिपोर्टिंग रोकने के लिए केदला नार्थ की उन सब खदानों में, जिनमें फिर से काम शुरू करना था और जिनके हम कंटूर (पहाड़ियों को सर्वे करके नाप लेना) नापी करवा चुके थे ताकि चोरी पकड़ी जा सके को बन्द करवा दिया और केदला साउथ की नई परित्यक्त खदानों में, जहाँ चोरी का भरपूर स्कोप था, चालू करवाकर मजदूरों का स्थानान्तरण वहाँ कर दिया। आठ किलोमीटर पैदल चलकर जाना और आठ घंटा खदान में बरसात के मौसम में खटना, मजदूरों को मंजूर न था। बहुत समझाया स्थानीय नेताओं ने हमारे परियोजना अधिकारी को कि इन खदानों में काम शुरू करने के चोरी बढ़ेगी, उत्पादन घटेगा चूँकि वहाँ कंटूर की नापी नहीं हुई है। एक गलत फैसला हो गया था, उसे यूनियन के कहने पर वापस लेना भी, एक अफसर की तौहीन होती है, वह भी एक सामंत-पुत्र जैसे अफसर की, सो वह नहीं माना। सीता, गोवर्धन और रत्नू ने ऐलान किया। मजदूर अड़ गया। तीन नम्बर ब्लाक का मजदूर तो किसी भी हालत में स्थानान्तरण की चिट्ठी लेने को भी तैयार नहीं हुआ। पक्का सेंटर के मजदूर फिसल गए थे।

“अड़े रहोगे तो गुप्ताजी आकर बना देंगी। चले जाओगे तो फिर जल्दी लौटना नहीं हो सकेगा।” सीता ने उन्हें बहुत समझाया।

दरअसल भीतर-ही-भीतर स्थानीय नेताओं का एक दल सीता को नीचा दिखाने के लिए उतारू था। सो स्थानान्तरण का पत्र ले लिया गया। तीन नम्बर का मजदूर अन्त तक सीता की बात पर अड़ा रहा। वहाँ कमला ने भी

मोर्चा सँभाला था, जो सी.आई.टी.यू. के बम्बई के सम्मेलन में भाग ले चुकी थी और उसके बाद से ही यूनियन के कार्यक्रमों में भाग लेने लगी थी।

मैं लौटकर आई तो सारी बातें सामने आईं। मुझे सीता की निर्णय लेने की शक्ति और टैक्टिकल लाइन पर गर्व हो रहा था। स्थानीय नेताओं की सोच पर मुझे काफ़ी गुस्सा भी आ रहा था। औरत जात होने के कारण सीता की बात नहीं मानी गई अन्यथा लड़ाई का इतना लम्बा दौर जो मुझे आकर चलाना पड़ा, न चलता। फैसला तीन-चार दिन में ही हो जाता। मजदूरों की, खासकर महिला मजदूरों की परेशानियाँ बढ़ गई थीं। सबकी कमाई घट गई थी। बरसात में जंगल पार करके जाना, नदी-नाले पार करना आसान काम न था। बच्चों को दूध पिलाने आने की समस्या भी थी। कोई क्रैच भी तो नहीं था वहाँ। आखिर बहुत घेराव-प्रदर्शन हुए तो पहली खेप में तीन नम्बर के मजदूर और छोटे बच्चे वाली औरतें, जिनके बच्चे दो साल तक के थे, लौटा दिये गए। अब कई औरतें ऐसी भी थीं जिनके बच्चे दो महीने के थे पर उसका कोई रिकॉर्ड न था, चूँकि उन्होंने मैटरनिटी बेंनेफिट नहीं लिया था। ऐसी औरतों में एक शिवनी कामिन भी थी। मरद औरत दोनों काम पर जाते। बच्चे को घर में बन्द कर आते। लड़ने-झगड़ने का एक नतीजा यह भी हुआ था कि दो वक्त काम पर जाने की बजाय, सर्रा (लगातार) काम चालू हो गया था, यानी बीच में खाने की छुट्टी नहीं। आपसी राय से सुबह सात बजे से दोपहर तीन बजे तक सर्रा (लगातार) ड्यूटी हो गई। मुंशी को कुछ दे-दिलाकर लोग दो बजे भी लौट आते थे। शिवनी उस दिन बहुत उदास थी।

“का बात है शिवनी?” सीता ने पूछा।

“क्या बताऊँ बहिन, बचवा बहुत नान्ह (छोटा) है। अभी दोउओ मास का न है। घर में कोउओ न है न सास, न ससुर, न ननद। आज ओकरा जी भी खराब है। मैं ताला लगाय के आय रहल हूँ। मन रह-रह के ओही तरफ जात है। अभी घर जीहें तो हाज़िरी कट जाही। मुंशी के ढेर कहा कुछ पैसा ले ले, पर कहे है कि पी.ओ. आए वाला है। हाज़िरी कटा के जाइके है तो जा।

दूसर यूनियन वाले खातर उकरा पी.ओ. का डर न है, बस हमरी यूनियन खातर सब बहाना बनात है।”

शिवनी ने सुनाया। सीता से रहा न गया। वह सीधे मैनेजर से जाकर बोली “तोर बचवा घर में बन्द कर के तोर महारू के काम पर आये पड़ते, तो पता लगते तोके? ई बचवा रो-रो के मर जइब तो के जिम्मेदार होतै? शिवनी के बचवा बीमार हय। डॉक्टर के पास ले जाए कि छुट्टी दे और हाज़िरी नाय कटते। काटतै तो फिर देखियो!” शिवनी को पकड़कर सीता सीधे उसके धौड़े पहुँची। ताला खोला। पाँच-छः घंटे बीत गए थे बच्चे को छोड़े। बच्चा रो-रो के बेहाल होकर बेहोश हो गया था। डॉक्टर के पास जाते-जाते मर गया।

“बचवा के ले के चलो पी.ओ. के घेरेंगे। एसने सबके बचवा मर जइते।” सीता ने कहा।

पर कुछ मजदूर पुराने खयालों के थे। अड़ गए।

“न बचवा के माटी देय दो, फिर आके पी.ओ. के घेरब। चली है गुप्ताजी की नकल करने। पहले उस जैसन बन तो जा!” कुछ ने ताना कसा। सीता चुप हो गई।

“गरम लोहे पर चोट करे से, लोहा के जैसन चाहो बैसन गढ़ लेब। ठंडा हो जाए पर पीट-पीट मर जइब, ताओ कुछ न होतै।” सीता ने दुःखी मन से कहा।

मुझे मालूम हुआ तो बहुत दुख हुआ। मैंने मजदूरों को फटकारा।

“सीता ठीक कहती थी पर तुम लोग औरत मानकर उसे नकार देते हो। मैं भी तो औरत हूँ। फिर मेरी बात कैसे मानते हो? जो लोग सीता का इसलिए विरोध करते हैं कि वह औरत जात है, वही लोग तुम सबका विरोध भी करते हैं।” मैंने कहा।

धीरे-धीरे मजदूरों के मन में यह बात बैठने लगी थी। कुछ लोगों की कमाई हाज़िरी छोड़कर घटकर दो रुपया रह गई थी। सीता ने पी.ओ. को एक दिन जा घेरा।

“काहे ले खदान चलाये रहल पी.ओ. साहब? दो रुपया का तो मेरा

सुनील लेमनचूस खा जाय है एक दिन में। कितना प्रोडक्शन कर रहल हो दिन भर में? जे मजदूर घूस देत है, ओहे कमात है। जे घूस न देत है, ऊ दो टका पाय रहल है। प्रोडक्शन केने से होतै?” सीता ने ताना मारते हुए कहा।

पी.ओ. के दिमाग में उसकी बातें अटने लगी थीं। सीता महाप्रबन्धक से भी मजदूरों को वापस पुरानी खदानों में लाने की बात कर आई थी। दूसरी खेप में गये अधिकांश मजदूर वापस आ गए थे। छह महीना लग गया सभी को वापस लाने में। सीता अड़ी रही थी। वह स्वयं आखिरी खेप के साथ पुरानी खदान में वापिस लौटी थी।

“लीडर हो के हम पहले आ जाइब तो मजदूरवन न कहते अपन-अपन खातिर लीडर है, हमनी के छोड़ के चल देले।”

सीता ने अपनी माँ से भी जाने को कहा।

“तू चल जा मैया, बूढ़ी औरतवन वाली खेप में। बूढ़ा के छोड़ दे। बाद में चल जायब।”

“हमर मरद के बूढ़ा कहे है? अभी तो दस महारारू रखने के ताकत है हमर बूढ़ा में। आपन मरद के छोड़के अकेले नाय जाहिए हम। दोनों जन संगे जाइब।” सुमित्रा अपनी बेटी पर बिगड़कर बोली।

सब मजदूर हँस दिए सुमित्रा के जवाब पर।

“बहादुर बेटी की माय भी बहादुर है।” लिखी बोला।

सीता लड़ती है, झुकती नहीं है। वह यह नहीं जानती उद्देश्य क्या होता है, लक्ष्य क्या होता है? पर वह इतना जानती है, उसे दूसरों की खातिर लड़ना है। एकता करनी है संगठन बनाना है। यह जो मुंशी मैनेजर सब चोरी कर हर साल एक-एक ट्रक निकाल लाए हैं, इन्हें जेल भिजवाना है। वह नहीं जानती ऐसे लोगों की पहुँच कितनी ऊँची होती है, वह तो बस यह जानती है कि उसे मजदूरों की एकता बनाने के लिए जो करना पड़े, सो करना है। वह अगल-बगल के गाँवों में भी जाती है। उसी दिन तो मकुन्दा की ‘चरकी’ (गोरी औरतों का नाम यहाँ लोग चरकी रख देते हैं। चरकी का अर्थ है सफेद) तथा अन्य औरतों को लेकर उसने तीन दिन तक आरा से केदला की रोड पर

धरना दे कर पूरा का पूरा ट्राफिक जाम कर दिया था।

“नौकरी दो, पानी दो, स्कूल बनाओ, तब सड़क चालू होगी।” माँगें रखी थीं सीता ने। गोवर्धन और सीता दो ही तो थे गाँव वाले औरत-मरद के साथ। 20 घर का तो गाँव ही है, फिर भी हजारीबाग से एस.डी.ओ. को आना पड़ा था। रामगढ़ से डी.एस.पी. भी आ गये थे। दो महीना पहले शर्मा मैनेजर को गोवर्धन ने धक्का मुक्का कर दिया था। फलतः प्रबन्धन से उससे बातचीत बंद कर दी थी। उस दिन परियोजना अधिकारी को मामला सुलझाने के लिए गाड़ी भेज कर गोवर्धन को बुलवाना ही पड़ा था। सीता अब लड़ाई के संघर्ष के मुद्दे खुद खोजने लगी थी। सीता टाइम-रेटिड बनना चाहती थी पर यूनियन के कुछ नेतागण उसे सिक्यूरिटी गार्ड में इसलिए भिजवाना चाहते थे कि उसकी नेतागिरी छूट जाए। प्रबन्धन भी उसे सिक्योरिटी गार्ड बनाने को आतुर था। मुझे मालूम हुआ तो मैंने सीता को बताया कि इसके पीछे उनकी मंशा क्या है? यह एक साजिश है। वास्तव में यूनियन के काम के चलते सीता का नागा (अनुपस्थिति) बहुत हो गया था, जिससे उसकी ‘कमनी’ (कमाई) कम हो गई थी। शुकरा और सुमित्रा ने भी जवाब दे दिया था

“अब हम हूँ न पारवे! तोहर घर हम न पुराये सकत। सरस्वतिया विधवा हो गेले, उकरा भी तो देखे पड़े है। तू आपन देख।”

सीता पीस-रेटिड ठेका मजदूर है। नहीं खटेगी तो कमाई कम हो जाएगी। ऐसे दंगल उसकी कमी पूरी कर देता था। टाइम-रेटिड हो जाने से बँधा-बँधाया पैसा मिलता। वह समझ गई थी कि सिक्यूरिटी गार्ड बनने से उसका अपना तो बहुत लाभ होगा पर यूनियन के काम पर रोक लग जाएगी। उसने सिक्यूरिटी गार्ड बनने से मना कर दिया।

“मजदूरवन पर लाठी हमर से न चलतै।” सीता कहती।

“देह में ताकत है तो खट के पुरा लेंगे। पैसा तो हाथ का मैल है।”

यह कहकर वह अपने बेटे को चूम लेती, जिसे वह पीठ पर बाँधकर हर रोज़ कार्यस्थल पर ले जाती थी। वह दिन-भर पत्थरों से खेलता और साँझ को माँ की पीठ पर सवार होकर लौटता। वह बेटे से बतियाती

“अरे बड़ा होकर अपने बप्पा को पीट के ठीक कर देगा न मेरे बुतरू! तू देख रहल है न! तोर माय के कितना दुख दे रहल है तोर बप्पा!”

सुनील भी तुतलाकर बोलता “लाठी ला मैया! हम पीतबै (पीटबै) आसीन के। हजारीबाग वाली नानी से कै के देल (जेल) भिदा देब।” सीता सुनील को छाती से लगाकर चूम लेती, जैसे उसने सचमुच यासीन को जेल भिजवा दिया हो और वह फिर सपनों में खो जाती। जब सुनील बड़ा होगा, अपने बाप से ट्रक छीनकर ले आएगा, जो उसने उसकी कमाई से किना है। तीन सौ मन धान खेत की खड़ी फसल काटकर अपने घर ले आएगा। यासीन देखता रह जाएगा। जबर बेटे के आगे उस बाप का बस न चलेगा, जिसने उसकी माँ को जिन्दगी-भर के लिए दुख में ही नहीं झोंका बल्कि उसे मारने की साजिश भी की। उसका आदिवासी मन अपने बेटे के जवान होने में अपने निजी दुखों के अन्त का सपना तो देखता है पर उसने अपने को कभी कमजोर नहीं माना। सीता मुकाबला करती है। उसने परिस्थितियों को अपनी मर्जी से ढाल लिया है। वह संतोषी माँ का व्रत तो जरूर रखती है, पर पति की रक्षा के लिए नहीं, पति को सज़ा दिलाने के लिए। वह छठ भी मनाने लगी है। ‘बम’ (बिहार में देवघर जाने वाले को बम कहते हैं) बनकर वह गेरुआ साड़ी पहनकर काँवर लेकर, ‘बचवा’ को पीठ पर बाँधकर, वह देवघर भी हो आई है। पति की समृद्धि, खुशहाली, दीर्घायु के लिए नहीं, जिसके लिए बिहार-भर की औरतें यह पर्व मनाती है वह तो भोला बाबा से कहकर आई है, उसे केस में जितवा कर यासीन मियाँ से खर्चा दिलवा दे।

“सीता। तू जो यह व्रत रखती है, वह तो औरतें पति के सुख के लिए रखती हैं। तू एक तरफ उसके खिलाफ लड़ रही है, दूसरी तरफ उसकी भलाई के लिए व्रत भी रख रही है। ये दोनों बात कैसे?” एक दिन मैंने उससे पूछ ही लिया।

“नहीं गुप्ता मैया, देवी-देवता भी न्याय करते हैं। देवता हमर खिलाफ कैसे जाइब? हमनी तो केसवा में जीते और यासीन से खर्चा लेवे के मन्नत

मनायल हय। संतोषी माँ होवे या भोला बाबा, वह भला काहे ले यासीन का पख लेंगे? आखिर देवता भी ते हमरै विश्वास पर टिकलै है। पंडित लोग जे बोले है, बोले दे उकरा। होइब ओहे, जे हमनी चाहब।” उसके विश्वास को तोड़ सकना कठिन जान पड़ा। एक बात की खुशी मुझे जरूर हुई कि वह धर्म की अन्ध-विश्वासी लीक को भी अपने अनुरूप मोड़ रही है। न्याय-अन्याय का भेद जान रही है। औरत की अस्मिता को बचाने के लिए धर्म को अपने कहे पर चलाने का दम भर रही है; उसके पीछे-पीछे नहीं चल रही वह। एक दिन उसका इन कर्मकांडों, अनुष्ठानों से भी मोह-भंग होगा। इस विश्वास के साथ मैंने विषय बदल दिया। हर चीज़ के लिए समय चाहिए और सीता समय पर इन सबकी निरर्थकता भी समझ जाएगी, यह निश्चित है।

सीता अब बड़े जोश से घेराव करने का सुझाव देने लगी है।

“काहे नहीं एक बार सभै औरतवन के जुटा के सी. एम. डी. के राँची जाय के घेरल जाय औरतवन के बदले औरत के ही नौकरी देवे पर लगल रोक के हटाये खातर। पहलकी के रहते दूसर डौकी (पत्नी) लाये वाले मरद की नौकरी से हटाय खातर, उकर नौकरी उकर डौकी को दिलवाये के खातर, बचवन के देख-रेख के खातिर, काम के टैम में दाई-नर्स के इन्तजाम करे की माँग रखल जाय के खातिर।”

सीता की लड़ाई का आयाम अब बढ़ता-फैलता जा रहा है। अब वह अपने से बाहर खड़ी सीताओं के लिए लड़ने लगी है।

सीता लड़ रही है हर मोर्चे पर, सीता जूझी है हर रिश्ते से। सीता को लड़ना पड़ा है उमर के हर मोड़ पर। सीता अड़ी है निर्णय की हर घड़ी पर। सीता ने जिन्दगी को मौत से छीना है अपने लिए नहीं अपनी जमात के लिए अपने समाज के लिए। उसने अपने भविष्य को सामाजिक बन्धनों से मुक्त किया है। वह जानने लगी है यह लड़ाई लम्बी है; अकेले नहीं लड़ी जा सकती, इसलिए सीता अब जमात बनाकर लड़ने की तैयारी कर रही है। लामबन्द हो रही है। उसका मानना है कि उसकी तरह हर औरत लड़ती है,

लड़ना चाहती है, अगर मौका मिले या कोई राह दिखाए या विश्वास का सहारा और साहस का सपना दे। वह साहस बटोर चुकी है। उसे अब अपनी जमात में बाँटना है इस साहस को, इस विश्वास को।

उसे यह विश्वास है कि एक दिन उसका ही नहीं, उन सभी का आएगा जो अभी अलग-अलग, अकेले-अकेले, जाने कहाँ-कहाँ, किस-किससे, कैसे लड़ रही हैं और बनती जा रही हैं एक जमात, एक कतार, एक पाँत, एक शृंखला, एक कड़ी। वह अपने को उन लड़ने वालों की कतार में सबसे आगे खड़ी देखती है। अग्रिम पाँत में लग गई है सीता। पाँत जो चुप थी आज तक... अब बोलने लगी है। पाँत जो जड़ थी सदियों से... हिलने लगी है... चलने लगी है। उसे लगा कि वह समुद्र की बड़ी-बड़ी उठने वाली लहरों से जा मिली है, जो बार-बार फण काढ़कर किनारों पर हमला कर रही हैं किनारे जो उन्हें सदियों से बाँधकर रखे हैं। वे चट्टानों पर हल्ला बोल रही हैं चट्टानें जो उनके रास्ते रोकती हैं पीढ़ियों से, दुनिया की हर नुक्कड़ पर। लहरें लौटते हुए अपने साथ तट पर फैली जीर्ण-शीर्ण मानसिकताओं के बालूही कणों को बहाकर ले-जा रही हैं, समुद्र के गर्त में दफनाने के लिए। वह इन्तज़ार में है कि अगले दिन जो सूरज निकले... जो हवा बहे... उसके हिस्से में भी आए, जिससे वह वंचित रही है, सभ्यता के आने के बाद से।

□□□

मौसी

औरत चाहे किसी भी वर्ग की हो, वर्ण की हो, कैसी भी धार्मिक, सामाजिक स्थिति की हैसियत वाली हो उसे अपना फैसला करने का हक देना, समाज अपनी तौहीन मानता है। वह उसका पीछा करता है, उसे झुकने पर मजबूर करता है। मध्यम वर्ग की औरतों में यह सब कुछ सामाजिक सुरक्षा के नाम पर होता है, तो बड़े वर्ग की औरतों में सुरक्षा के साथ-साथ अहम्, आन-बान, वंश, संस्कार और प्रतिष्ठा के नाम पर। निम्न वर्ग में आर्थिक परिस्थितियाँ उनकी मजबूरी होती हैं। औरत के समर्पण के लिए अपराध-बोध सबसे बड़ा हथकंडा है।

आदरणीय डॉ. रामविलास शर्मा जी
को
जिनके स्नेहादेश से
मैंने महिलाओं, मजदूरों, दलितों
की व्यथा को कहानी का
रूप देने की चेष्टा की

मौसी

“मैं अपने लिए दुलहिन खोजूँ या फूफी के लिए दूल्हा?” चिल्ला-चिल्लाकर, सुना-सुनाकर कह रहा था मोहना और मौसी (मोहना की फुआ को सभी मौसी कहकर पुकारते थे) को पटक-पटककर मार रहा था। थप्पड़ों से मारते-मारते उसके हाथ थक जाते, तो वह घूँसों से मारने लगता। घूँसे मारते-मारते ऊब जाता, तो लातों से मारता। पर मौसी थी कि प्रतिकार न कर, मार खाए जा रही थी।

मोहना को बचपन से ही बेटे की तरह पाला है मौसी ने। अपनी भाभी से पैदा होते ही उसे माँग लिया था उसने। आँचल में जो लिया, सो अब तक मोहना साथ ही है। पढ़ा-लिखा भी रही है। जवान हो रहा है मोहना पर पूरा जवान नहीं हुआ। मसँ भीगने लगी हैं। माँ-बाप के पास कभी रहा नहीं। बस फुआ ही उसकी माँ थी, फुआ ही बाबा। फुआ ने कई घर बदले थे और कई फूफा भी। सबने उसे प्यार दिया। फुआ तो उसे जान से ज्यादा प्यार करती थी। मजाल है कोई भी फूफा ऊँची आवाज़ से उसे बोल तो दे कुछ! फूफा भले बदले थे फुआ ने, पर वह खुद नहीं बदली थी। मोहना के लिए बस एक ही तथ्य सत्य था कि फूफा बदल सकते हैं पर फुआ नहीं बदलेगी। जवानी में ही फुआ ने माँ जैसे सब काम सँभाल लिये थे और बन गई थी सबकी मौसी। उसकी बहन की बेटा बिन्दु, उसे मौसी कहती, तो सभी उसे मौसी कहने लगे।

“क्यों पुराने फूफा का घर छोड़ देती है फुआ? क्यों वह ‘नयके’ (नए) फूफा का घर धर लेती है?” मोहना कभी भी यह सवाल नहीं पूछता था।

फुआ का सपना था, मोहना पढ़-लिखकर खूब बड़ा आदमी बने। “पुलिस का हवलदार नहीं तो कोलियरी का मुंशी या ठेकेदार जरूर बने! खेत में नहीं खटेगा मेरा मोहना। खेत हमनी के पेट भी तो नहीं भर सकत है। न ही पढ़ाई का खर्च दे सकत है। महुआ चुनकर, सखुआ बीनकर, कुसुम-फूल सिझाकर, कैसे सालो भर पेट भरतै? अब महुआ-सखुआ पर भी तो बहुतों की नज़र लगी रहत है। सिपाही से लेकर मुखिया, नेता, रंगदार सभी का हिस्सा देवे पड़त है। खेती करे पर भी तो नहीं पुरात। तब भी हजारीबाग आकर खटे के पड़ ही जात है। तब ‘काहे ले करेंगे’ अब खेती? ‘कुछो’ नहीं धरा इस खेती में। मूली, टमाटर उगाओ दस कोस शहर में बेचे जाओ, तब भी दस रुपया बैलगाड़ी उठा लेता है व्योपारी। बेचारी झुमरा वाली तो चुरचू पहाड़ से आउती हैं। चार आना किलो टमाटर का भी नहीं मिलता। मेहनत, खाद, बीज-पानी भी तो लौटत न है। क्या जरूरत है ऐसी खेती करे के? इससे अच्छा है कोलियरी में जाके कहीं कोई काम धर ले। भाई-भाभी को जमीन का मोह ही नहीं छोड़ता। आधी से ज्यादा जमीन तो भाई के ब्याह में ही बन्धक रखा गई। फिर चार-चार ‘चेंगने’ (बच्चे) हो गए। खर्चा बढ़ गया। कमाए वाला वही दुई जन। माय-बप्पा तो कबे के मराय (मर) गेले। अब हम न खटब तो घर में भूखों रह जायब सभै लोग। पर ऐसन कब तक चलतै? मौका मिलतेई (मिलते ही) मोहना के साथ लेके गाँव छोड़ के चल जाब।” मौसी सोच ही रही थी कि यह घटना घट गई।

अब क्या करती वह भी। भगवान सिंह के घर जाना तो नामुमकिन था वह गाँव लौट आई थी। सोचा था पन्द्रह हजार रुपया मिला है, भाई-भाभी के पास रह लेगी। भोज-भात करके बिरादरी को भी मिला लेगी। फिर माधो संग मिलके अपने भी कमाएगी। पर पता नहीं माधो को देखकर मोहना को क्या तो हो जाता है?

“कितना काम कर देता रहा माधो। अब गुजर करे खातिर तो कोई

मददगार चाहिए ना। फिर इतने दिन बाद तो मिला है हमरी उमिर का कोई? अब तक तो 'बूढ़वन' को ही ढोत रहल रही मैं। पता नहीं क्यों सारा गाँव जलने लग गेल है?...” ‘क्यों छाती पर साँप लोटे लगत है इन सबनी के, मोर खुशी देख के? मौलवी साहब से निकाह हुआ, त कोइओ नाय बोलले! भगवान सिंह ले गेले, फिर छोड़ भी देले, तबौ काऊ नाय कुसुकले! आइज (आज) जब माधो हमर संग रहे खोजे है, तो सब जात-कुजात खोजे लगल है। ऊ मियां, क्या जात लगता था? बाबू साहब का इनकर जात था? दुसाध क्या आदमी नाय होत है? माझी-मुंडा के कौन बाबू लोग छुआ खात हैं, जे अपन के बड़ जात मानत हैं? बिरादरी के भोज कराय दो तो सब जात-कुजात भुलाय जात हैं। ई कैसन कानून हय? मोहना के भी कान भर देलके है ऊ सब। देखो रेणुकाजी बुला भेजल हैं उकरा, का करता है लौट के?” मौसी सोच रही थी और मोहना का हजारीबाग से लौटने का इन्तज़ार भी कर रही थी।

दो

“क्यों रे मोहना, तूने मौसी को काहे मारा। तेरी फुआ है। कितना प्यार करती है तुझे। कितने प्यार से उसने तुझे पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, दुख काटा। अब, जब उसे सुख देने का समय आया, तू सयाना हुआ, तो तू मारने लगा माँ बरोबर फुआ को? तू जानता है कि नहीं कि कितना भी पूछने और धमकाने पर भी, तेरी फुआ ने पुलिस को तेरा नाम नहीं बताया। केस तो बड़ा सीरियस है। फँस जाता तो हाईकोर्ट तक से जमानत न होती तेरी और तेरे बाप की।” मैंने कुछ डाँटते, कुछ धमकाते, कुछ प्यार से कहा।

“क्या करूँ देवी जी, बात ही कुछ ऐसन हो गई, जे बर्दास्त से बाहर हो गई। वो सार (साले) माधो को लेके सारा मामला, सारा झंझट हुआ। फुआ को कोई मरद ही करना था तो माझी, मुंडा खोजती या चल जाती फिर भगवान बाबू के घर। ई दुसाधवा के साथ रहे लगले, इससे हमर बदनामी नाय है क्या? अब और कितने फूफा करेगी फुआ?” मोहना कुछ सवाल करता, कुछ जवाब देता-सा बोला।

“अपने माई-बप्पा से, अपन बिरादरी से काहे नहीं पूछता है रे यह सब बात? काहे उसका ब्याह नहीं किया जब उसे जरूरत थी? अब जात की बात करते हो? तब काहे सलीम के अब्बा उस मौलवी को दामाद मान लिया था सबने और इसे उसी के घर छोड़ दिया था? क्यों गाँव वालों ने भगवान सिंह से पैसा लेकर उसके साथ भेजा था? जब वह लौटी तो उसका पैसा क्यों

बिरादरी को खुश करने के लिए भोज-भात में खर्च करवा दिया? क्यों नहीं उसे अपने पाँव पर खड़ा होने दिया गाँव वालों ने? क्यों नहीं बसाने दिया उसे भी अपना घर?" मन-ही-मन मैंने यह सवाल पूछ डाले। एक बार तो मेरा मन हुआ मोहना से यह सब पुछूँ पर यह सोचकर चुप रह गई कि पूरे समाज के अपराधों का जवाबदेह अकेला यह नन्हा मोहना कैसे हो सकता है? वह तो बस समाज की बिसात का एक मोहरा है।

“अब क्या करेगी मौसी? कहाँ रहेगी? क्या खाएगी? उसका सारा का सारा पैसा तो तुम लोगों ने खर्च कर दिया। क्या उसे फिर भगवान सिंह के साथ भेज दोगे? उसे अपने पैरों पर खड़ा होने में मदद करो, मोहना। उसकी अपनी उम्र का माधो अगर जिन्दगी-भर उसका साथ देने को तैयार था तो क्या हर्ज था? उस बूढ़े मौलवी और भगवान सिंह से तो अच्छा था। अब तुम साथ नहीं दोगे तो उसका कौन होगा? अब तो मजदूरी करने की उसकी आदत भी छूट गई है कि कहीं ईटा-पत्थर ढो लेती। जंगल का कानून भी सख्त हो गया है। पकड़ा जाएगी तो तेरी जात-बिरादरी तो उसे छुड़ाने ना जाएगी। जिन्दगी-भर सड़ जाएगी जेल में। जा, जाके देख हजारीबाग जेल में। दारू चुआने के केस में सात-सात वर्ष से वहाँ पड़ी हैं कई अधेड़ बूढ़ी औरतें, जबकि उस केस में सज़ा कुल दस दिन की ही होती है।” मैंने प्रगट में उससे कहा।

मोहना कुछ सोच में पड़ गया और बोला, “ठीक है देवीजी! मैं फुआ के मामले में बीच में नहीं पड़ूँगा। बिरादरी को सँभालना मेरे लिए मुमकिन नहीं। जे हमनी ऊ दिन फुआ के मारने नहीं लगते तो ऊ सबनी फुआ और माधो को तो जान से ही मार देते, हमर और हमर भाई-बप्पा को भी नाय छोड़ते। गाँव छोड़के फुआ कोनो दूसर (किसी) जगह चल जाय, तो बिरादरी का न चलेगा।” मोहना ने सफाई देते हुए आधी हिन्दी आधी खोरठा में कहा।

मैं सोच में पड़ गई “क्या होगा इस समाज का? क्या होगा इस औरत का? जिसे न आदिवासी अपना समझता है न दिक् ही अपना कहता है। वह न गाँव की रही, न शहर की। कहाँ जाएगी मौसी?”

“कोलियरी जाएगी... सड़क पर जाएगी... ईटा ढोएगी... माटी ढोएगी...

बालू ढोएगी! काम करेगी काम, और जब उसके हाथ अपना पैसा होगा तो ये बिरादरी, ये गाँव, ये शहर, सबके सब सवाल करना बन्द कर देंगे उससे।” खुद ही जवाब दिया मेरे मन के भीतर की एक सबल औरत ने।

■

उस मार के बाद मौसी बहुत उदास रहने लगी थी। एक माधो कुछ सहारा देता था, वह भी चला गया। काफी चोटें लगी थीं माधो को। आठ टाँके लगे थे। वह अभी अस्पताल से लौटा नहीं था। पुलिस पूछने घर गई थी। पूछताछ हुई। वह आया ही नहीं था घर लौटकर। भाई-भाभी पूछते ही नहीं। बिरादरी ने कह रखा है, अगर माधो उसके घर गया तो सभी दुसाधों के घरों को आग लगा देंगे।

“आखिर की कसूर हले ऊकर (उसका)?” वह बार-बार पूछती उनसे जो वहाँ नहीं थे। प्रश्न लौटकर उसी के वक्ष से टकराता। वह छाती पर हाथ धर के बैठ जाती। एक टीस प्रश्नचिह्न-सी उसका सीना चीरती रहती।

“क्या मोर मन नाय हो सकत है ब्याह करके बस जाय के? काहे बिरादरी तब सहारा नाय देलके जब मौलवी मरे पर घर लौटल रही थी मैं? ठीके कहत रहीं रेणुकाजी, पैसा बचाय के रख। अपने पाँव पर खड़ी हो जा, तो कोइयो कुछ नाय बोलते? अब सारा पैसा सिराय (खत्म) गेले, तो सभै हमर बाप बन रहल है। तब बाप बनेके कोउओ तैयार न हलै, जब भगवान सिंह पैसा देके हमर के किने (खरीदने) खातर गाँव आयल रहे। जब मौलवी हमर संग निकाह पढ़ाय लेल, तभे भी कोऊ ना बोलले?”

वह बार-बार तर्क गढ़ती उन सबके खिलाफ जो वहाँ नहीं थे जिन्होंने उसका बहिष्कार कर रखा था। उसके तर्क ऑक्टोपस की तरह उसे ही घेर-घेर कर कसते रहते। कनखजूरे की तरह डंक मारने को उसने अपने इर्द-गिर्द विष भरे तर्क छितरा दिए थे पर कोई पास होता, तब न वह डंक मारती। वह तो नितान्त अकेली रह गई थी। अब उस पर नज़रें भी उठनी बन्द हो गई थीं।

उसे देखते ही लोग अपना मुँह फेर लेते या अपने-अपने घर में ढुक जाते। वह खो जाती बीती यादों में। जवानी के दिनों में लौट आती वह। कितने लड़कों की नज़र लगी रहती थी उस पर। बड़ी बहन का ब्याह तो बप्पा ने जीते-जी कर दिया था पर 'बड़-बहन' एक बेटी बिन्दु के जन्म देते ही मर गई। बहनोई 'दूसर' कर लाया। 'दुसरकी' आपन 'पहलके' की औलाद से एक बेटा साथ लाई, जिसे रिवाज़ के माफिक बहनोई ने 'पाले-पोसे के गछ' (स्वीकार) लिया। अब वह रह गई बिन ब्याही। कौन फिकर करता उसकी? भाई के ब्याह में जो खेत बंधक रखाया, वह छूटा ही नहीं। फिर भाबी के भी हो गए चार-चार गो 'चंगना' (बच्चे)। उनके पालने की भी मुसीबत थी। तो कौन मौसी को बिठा के खिलाता? कौन उसके ब्याह के लिए सोचता? बिन ब्याही मौसी ने सब काम अपने जिम्मे ले लिया। वह भोरे उठके बस या ट्रक पकड़ के हजारीबाग झंडा चौक में मेहनत बेचने वालों की कतार में लग जाती। 'दूबर-पातर' (दुबली-पतली) देह, देखने में लम्बी, पर 'बुतरू' (बच्चे) सा चेहरा-मोहरा। सब मोटी, हट्टी-कट्टी माझी या मुंडा कामिनों को ही देख सुनकर खटाने खातिर ले जाते। कभी काम मिल जाता, कभी 'छूछो' (खाली हाथ) लौट आती। मजदूरी भी कम मिलती। 'पुसाई' न पड़ता। तब उसने जंगल की 'डहर' (राह) धरी।

मौसी पुराने दिनों की याद में डूबती-ऊबती मन-ही-मन पूरा किस्सा दुहराती। मानो उसके भीतर कोई बायस्कोप लग गया हो और वह घुमा-घुमा कर अपनी जिन्दगी की तस्वीरें दिखाती जा रही हो, साथ-साथ बताती भी जा रही हो दर्शकों को चूँकि बायस्कोप की तस्वीरें गूँगी होती हैं। वे बोलती नहीं।

तीन

गाँव के अन्य औरत-मर्दों के साथ मौसी भी मुँह अँधेरे रस्सी-टाँगी लेकर लकड़ी काटने चली जाती। बेन्दी का जंगल मशहूर था। दिन में भी घुसो तो रात जैसा 'करिया-करिया' (काला-काला) नज़र आता। सूखी लकड़ियाँ काट-बीनकर, मिल-जुलकर वे बड़े-बड़े गट्ठड़ बाँध लेते। नौ-दस बजे तक वे लोग पाँव-पैदल ही 'जंगले-जंगल' होकर हजारीबाग पहुँच जाते। सभी लोग साथ में 'भोथा' (बासी) भात बाँध कर लेते जाते थे। जब प्यास लगती, तो भात का पानी पी लेते, भूख लगती तो भात खा लेते। वही उनका नाश्ता, वही उनका खाना। थोड़ा नून, एक-आध हरी मिरच, कोई पा गया तो प्याज का एक टुकड़ा साथ में बस। लकड़ी बेचकर 'टटका' पैसा मिल जाता। ग्राहक भी कम न होते। उन दिनों शहर में भी अकेले आने पर कोई खतरा नहीं था। जंगल में न आदमी से खतरा था, न जानवर से।

“जानवर तो परक गए थे हमर संग। जेने (जिधर) हम लोग काम करतै, लकड़ी काटतै, जनावर उधर के रास्ता ही छोड़ देत रहे। पर सबसे बड़ा खतरा ते जंगल के सिपाहियन, फारेस्टरवन, और रेंजरन से रहल। जाने कौन जात रहल? न आदमी, न 'जनावर' पर जनावर ते भी जादा खूँखार! ऊ सब आदमी जैसन बर्ताव करते तो की हमनी सब जानत न रहल। बाघ देख के सायत (शायद) एते डर नाय लगतै, जैते ई तीनों के देहख के लगल रहै। कहीं कोई औरतिया पकड़ा गइल तो 'एको' इज्जत नाय छोड़तै ई 'सिपाहिया' सब। पैसा

भी धराय लेतै आर इज्जतो भी। पैसा मिले पर ते 'बुतरू-बुतरू' (बच्चे जैसे छोटे) सखुआ के गाछ भी कटवाय देत जालिम।..." मौसी अपने-आप बड़बड़ाती रहती।

जंगल की लकड़ी बेचकर मौसी को अच्छा पैसा हाथ लग जाता। वह लौटते वक्त बस से ही लौटती। जब-जब इन सिपाहियों और हाकिमों का तबादला होता तो बड़ी मुसीबत आ जाती। 'नयका' हाकिम अपना सिक्का जमाने के लिए खूब जुल्म करता। कभी लकड़ी 'सीज़' (जब्त) कर लेता, कभी कोर्ट-केस कर देता, कभी जुर्माना लगा देता। एक-दो दिन हाजत में रख देता। किसी-किसी को तो 'जेहल' भी भेज देता। बेचारे छः-आठ महीना बाद जमानत पर छूटते। जमानत कराने में ढेर 'काचा-पैसा' खर्च हो जाता। फिर कुछ दिन बाद सब ठंडा हो जाता। नयका अफसर भी 'दस्तूरी' बँधा लेता।

“तब जैसन चलता था वैसेने चलै लगता। चोरवन से ज्यादा पैसा लेके बड़-बड़ गाछ कटवाय देत रहा और गरीबन से जे सूखी लकड़ी बेच-बूच के गुजर-बसर करै है, थोड़ा कम ही घूस लेत रहा। पन लेता जरूर। सुन्दर 'जनी' देख के तो सार (साला) पीछेई पड़ जात रहा।”

मौसी सोच-सोच कभी गुस्साती, कभी मुस्काती।

चार

एक दिन शहर में भाव पटाने में देर हो गई। मौसी दूर निकल गई थी। बस-स्टैंड पर लौटी तो बस निकल गई थी। तब हजारीबाग से सिमरिया तक एक ही बस चलती थी। सवेरे आती थी, तीन बजे साँझ लौट जाती थी। कोई और साधन न था। कोई लौटता हुआ खाली ट्रक मिल जाता तो वह भी सवारियाँ चढ़ाकर ले जाता। ट्रेकर, मैटाडोर का तब चलन न था। अगर बस छूट जाय और कोई ट्रक न मिले तो हालत खराब हो जाती थी। शहर में अनजाने कहाँ रहें? अनठिकाने कहाँ जाएँ? फिर अपनी दो टाँग वाली गाड़ी पर भरोसा करके आदमी को पैदल ही गाँव लौटना पड़ता था। मौसी भी उस दिन बुरी फँसी थी। अब क्या करे? सर्दी का महीना। तन पर एक साड़ी। कन्धे पर गमछा। सिर पर लेठो (कपड़े या रस्सी का बना गोला, जिस पर मजदूर टोकरी या सामान रखते हैं)। कैसे कटेगी रात, वह इसी सोच में पड़ी थी? असल में इन लोगों की दिनचर्या बड़ी सीमित होती है। मुँह अँधेरे जंगल जाना। दिन-भर शहर में लकड़ी बेचना या मजदूरी करना, साँझ को बस से लौट जाना। राँधना-पकाना। हँडिया या महुआ चुआना। पीना-खाना। घर के बाहर बने मिट्टी के ही बेंचनुमा चबूतरे या बड़े-से गाछ के तने पर, जिसे घर के बाहर बैठने के लिए रख दिया जाता है बैठकर 'बतियाना' गाँव घर का झगड़ा हो तो मिल-जुलकर मिटाना-निपटाना। पर्व हो या हफ्ते का पैसा मिला हो, तो नाचना-गाना। कोई शिकार मार के लाया हो, तो मिल-जुलकर खाना, नाचना,

फिर सो जाना। मिट्टी के घर। न खिड़की न दरवाज़ा पर एकदम साफ-सुथरे। चावल का दाना भी गिरा हो, तो बीन लो। दीवारों पर रंग-बिरंगे चित्र। फूस या खपरे की छत। गर्मी में ठंडे, सर्दी में गरम घर। घर के भीतर हँडिया, महुआ चुआने का जुगाड़। बाहर बाड़ी, जिसमें उगी कद्दू, लौकी या निनुए की लतर, पेड़ या घर की छत पर चढ़ी रहती है। ये लोग 'किसिम-किसिम' का साग बाड़ी में ज़रूर उगाते हैं। धान, मक्का और 'रहर' (अरहर) तीनों की खेती करते हैं। मरद गर्मी में उघाड़े बदन रहते हैं। बस लँगोटी या घुटनों के ऊपर लपेटी आधी धोती। सर्दी में कभी चादर ओढ़ ली। चादर न हो तो लकड़ी जलाकर ताप लिया। लोग खटिया के नीचे बोरसी भी रख लेते हैं, खासकर बूढ़े-बच्चे और बीमार। सर्दी में बाहर बिना आग तापे उघाड़े बदन रहना कठिन है। जंगल में तो लकड़ी जमा कर, कड़ाके की सर्दी में भी ये लोग रात-रात भर उघारे बदन ही अगोरते रह जाते हैं। यहाँ शहर में क्या करे मौसी? न लकड़ी है कि जला ले, न ठौर है कि कहीं सर छुपा ले।

ज्यों-ज्यों सूरज लाल होता जाता था मौसी की अकबकाहट बढ़ती रही थी। हवा में ठंडक बढ़ रही थी। एक साड़ी वह भी घुटनों तक। एक गमछा क्या ढँकेगा देह? शरीर पर रोंये खड़े हो रहे थे।

सामने एक मस्जिद दिखी। वह उसी के बरामदे में जाकर बैठ गई। आने वाले ट्रक आते-जाते रहते। मस्जिद के आगे कुछ रुकते, तो कुछ आगे बढ़ जाते।

“क्या करूँ, कहीं कोई चीहन-पहचान वाला भी तो नाय है?” मौसी सोच-सोचकर घबरा रही थी।

मौसी को अहसास था कि वह सुन्दर है। जवान है। बदन इकहरा पर गठा-गठा है। कद-काठी युकलिप्टस के गाछ-सी लम्बी है। वह सोच रही थी कि मुहल्ले में जाकर कोई दरवाज़ा खटखटाए और रात-भर के लिए जगह माँगे।

“पर ई तो मियाँ टोली है।” यह ख्याल आते ही वह घबरा गई।

“पन (पर) हिन्दू टोली वाले कौनो शरीफजादे होते हैं? ये जंगल

सिपाहियन और हाकिम सभै तो हिन्दुवन ही हैं? कभी कोई औरत के छोड़े हैं ये जालिम? बस मौका मिले भर की देर होवे है, ऐसन झपट्टा मारे हैं कि जैसे सभै जनी (औरतें) सरवन (सालों) की खरीदी हुई तियन-तरकारी (सब्जी-भाजी) होवे हैं।”

इसी उधेड़बुन में थी वह, कि एक ट्रक गुजरा रुका। एक सिर बाहर झाँका गोरा-चिट्ठा, घुँघराले बाल...

“इतनी रात गए यहाँ कैसे? घर काहे नहीं गई? कहाँ है तोर घर? घर से भाइग (भाग) के आई है या मरद-मारपीट के भगाय देलके? अरे मरदों की मार-पीट तो रोजे (रोज़) चलत है। ज़रा-सी चढ़ गई, तो पीट दिया साहब ने डाँटा तो पीट दिया। जोरू पर ही गुस्सा उतारते हैं सब साले। पर झगड़ा से डर के कोई घर छोड़ता है भला? हमरे घर में ऐसन-ऐसन झगड़ा रोज़ होवे है। चल उठ, तोर घर में फिकर लगल होतै। चल हम घर पहुँचाय देव।” कहते हुए वह ट्रक से उतरा और उसे उठाने की लिए हाथ बढ़ाया।

मौसी को उसकी बातों पर हँसी और गुस्सा दोनों आया। वह बिना मौसी के जवाब के प्रतीक्षा किए, अपने ही सवाल पूछता था और अपने ही जवाब भी देते चले जा रहा था।

“तू अपने ही इतना ताबड़तोड़ बोले जा रहल है कि दूसर के बात सुनतै नाय। हमर के कुछो सुनवै, तबै ना जानवै। तू कहाँ रहे है? तोर का नाम है? तुई ट्रक चलात है। ई तो हम अपने दुई आँख से देख लेल है। पर तू मालिक हय या ड्रैवर है? कुछ तू न बतायब तो हम कैसन जानब? खाली आपन हाँकल (हाँकते) जा रहल (रहा) है।” मौसी ने उसी के लहजे में कहा।

“खता माफ हो। गलती हो गेल। गलती आदमी ही करत है न। बन्दे का नाम सलीम है और पेशा ड्रैवर। बगल में मेरा मकान है। अब आप ही बताइए किस खुशी में सर्दी की इस रात में खुले बरामदे में आप यहाँ इस अँधेरे में बैठी हैं? सवेरा होने तक बर्फ की सिल्ली बन जाएँगी आप। फिर गर्म पानी में डुबोकर आपका ‘हाथ-गोड़’ (हाथ-पाँव) सीधा करना पड़ेगा।” वह सूरजमुखी-सी मुस्कान मुस्काया।

“मोर घर तो बेन्दी हय। लकड़ी बेचे ले आयल रही। तीन बजिया बस छूट गेल। अब जाय के कोई सवारी नाय है। चीहन-पहचान भी कोई नाय (नहीं) है। ई पूजा का थान देखे रहली, तो कौनो ढंग से रात गुजारे खातर इकर (इसके) बरामदे में बैठ गइल। बिहाने (सवेरे) आपन घर चल जायब। मजबूरी से रुके पड़ गेल। कोई जान बूझ के थोड़े सर्दी में मरे खातर बरामदे में बैठते। मरे वास्ते तो औरों भी सस्ते-सुविस्ते तरीके ढेर हंय। हम तो जिनगी जिये खातर इहाँ बैठ गेल।” मौसी ने भी उसी टक्कर का जवाब दिया।

“तो फिर हम किस दिन काम आएँगे? आदमी ही आदमी के काम आता है न। बगल में हमर घर है। चार-चार भाई-भाभियाँ हैं। माय है। बूढ़े मियाँ यानी कि हमारे अब्बा हुजूर भी हैं और फिर मैं हूँ। घर में सबसे छोटा बेटा। मेरे बाद तो चार-चार बेटे अल्ला को प्यारे हो गए। हम पर विश्वास हो तो चलिए हमारे घर। सवेरे अपने घर चली जाइएगा।” उसने अपने घर का पूरा ब्योरा देकर गंभीरता से कहा।

मौसी सोच में पड़ गई। नहीं जाएगी तो सर्दी में मरेगी, जाएगी तो क्या भरोसा? साँप-छुछुन्दर-सी हालत हो गई।

“देखिए, हाथ की सब अँगुली बरोबर नहीं होतीं। दुनिया में सब लोग एक जैसे नहीं होते। हमारा चेहरा देखिए। छल-कपट, धोखा-धड़ी नज़र आए तो थूक दीजिए इस चेहरे पर। नहीं तो चलिए, हम लोग भी शरीफ हैं। आप मुसीबत में हैं।” सलीम ने उसके मन की दुविधा उसके चेहरे पर पढ़ कर कहा।

मौसी उठी और धीरे-धीरे उसके पीछे जाने लगी। बड़ा-सा घर, चार-पाँच कमरे, बड़ा-सा दलान, ढेर सारे बच्चे। सलीम उसे अपनी बूढ़ी माँ के पास ले गया। उसकी मुसीबत का बयान किया। माँ ने घर से दो सुजनियाँ (पुरानी साड़ियों/धोतियों को तहयाकर एक साथ रंगीन धागों से सी गई चादरें) निकालीं। एक बिछाने को, एक ओढ़ने को। उसकी माँ ने अपनी बगल में ही उसे सुलाया।

सबेरे वह उठी! घर में जो भी उठता उसे देखता और पूछता “कौन है? कौन है?”

ढेर से बच्चे जमा हो गए मौसी के गिर्द, जिनसे मौसी ने खेलना शुरू कर दिया था। सलीम ने एक-एक थाप बच्चों को दी।

“यह ‘कौन है-कौन है’ क्या लगा रखी है? सबको जो सवाल करना है, एक ही बार कर लो। मैं सबको जवाब एक ही बार दे दूँगा। अब सुनो। तुम लोगों के पास आँख हैं कि नहीं या बस जवान ही है ‘कौन है-कौन है’ पूछने के लिए? देखते नहीं, आदम-जात औरत है। साढ़े पाँच फुट लम्बी है। दो हाथ, दो पैर, दो कान, दो आँख, दो नाक, तौबा-तौबा भूल हो गई, एक नाक है। अरे! दीदी बोलो। मौसी बोलो। खाला बोलो। बूढ़ी तो है नहीं यह कि दादी-अम्मा बोलोगे। हैं चलो फूटो।” वह बच्चों को हड़काते हुए बोला। सब बच्चे खिलखिलाकर हँस पड़े।

“जाओ, घर में मेहमान आया है, नाश्ता कराओ, फिर इन्हें अपने घर जाना है।” सलीम ने भाभियों को सुनाते हुए कहा।

बड़ी भाभी ने नाश्ता भेज दिया। छोटी भाभी पान ले आई।

“तो यही पसन्द है आपकी?”

जाते-जाते छोटी भाभी तीर छोड़ गई। रोज़ का वाचाल सलीम मौसी के सामने कहे गए इस जुमले से सकपका गया बोल नहीं पाया। मौसी भी सकुचा गई। वह गमछा समेटकर घर जाने के लिए उठ खड़ी हुई।

“मैं भी उधर ही गाड़ी लेकर जा रहा हूँ, रास्ते में उतार दूँगा।” सलीम ट्रक लाने चला गया। मौसी बगल में बैठी, खलासी पीछे। गाड़ी चल दी।

“कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई?”

“नाय, तकलीफ़ कैसन? आराम से सोवे के मिल गेले।”

“कभी फिर ऐसी मुसीबत आए तो सीधे घर चले आना, मैं रहूँ या न रहूँ। और देखो, भाभी की बात का बुरा न मानना। वह ऐसे ही मज़ाक करती रहती है।”

“सब समझ रहल हूँ...” मौसी बोली।

कुछ गुदगुदा गया अन्दर-ही-अन्दर। सलीम उसके गाँव में उसके द्वार तक ट्रक से पहुँचाने गया। ट्रक देखकर सब बच्चे-बूढ़े जमा हो गए। भाई-भाभी

को चिन्ता लगी थी। मौसी को देखकर चैन पड़ गई।

अब अक्सर सलीम मौसी के घर आ टपकता। कभी सिमरिया से आते हुए, उसे ले लेता कि हजारीबाग पहुँचा देगा तो कभी हजारीबाग में देर हो जाती तो मौसी उसके घर रह जाती। मौसी को सलीम अच्छा लगने लगा था। वह जब शहर जाती तो सलीम उससे मिल ही लेता। अक्सर लौटते वक्त 'जोहार' (आदिवासी जब मिलते हैं, तो आपस में 'जोहार' कहते हैं) या दुआ-सलाम भी हो ही जाती।

“काहे जंगल में लकड़ी काट के रात-दिन मेहनत करती हो, खतरा मोल लेती हो और अपनी सुन्दर देह गलाती हो? किसी के घर चौका-बरतन या बाल-बुतरू पालने का काम काहे नहीं पकड़ लेती?” एक बार सलीम ने उसे बड़े प्यार से कहा था।

मौसी ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह मुक्त थी। स्वच्छन्द थी। दिन भर खटना, साँझ को पीना, रात को आराम से सोना और मुँह अँधेरे उठकर जंगल जाना। दिन में बस या ट्रक पकड़कर शहर जाना। रास्ते में ट्रक या बस के ड्राइवर से ठिठोली, गाँव के जवान लड़कों से हँसी-ठट्टा। बस, इससे आगे कुछ नहीं। गाँव के ठाकुरों के लड़के भी उसकी लाठी-सी मजबूत काठी वाली देह पर लट्टू थे। पूरी फिज़ा उस पर फिदा थी लेकिन उसका तेवर देखकर कोई बात करने की हिम्मत न जुटा पाता था।

हाँ तो ब्याह हुआ नहीं था मौसी का। न बारात आई, न दूल्हा द्वार लगा न माँदर बजी, न नाच हुआ न पाहन आया, न सरना पूजा न पलास खोसा, न सखुआ और ऐसे ही एक दिन ट्रक में सलीम के साथ हजारीबाग जा रही थी कि वह औरत बन गई। मौसी कुछ जान भी न पाई। सिमरिया से हजारीबाग के बीच जंगल में ही सखुआ ने फूल बरसाए, पत्तों ने सेज सजाई हवा ने गीत गाए आकाश ने अशीष दी पलाश और करौंज के पेड़ मुस्काए, खर-पतवार चरमराए, चिड़ियां शर्मा कर फुर से उड़ गईं। लताओं ने पेड़ों को कस के जकड़ लिया और वहीं सुहाग-रात नहीं सुहाग दिन मना उनका।

उसके जैसी मेहनतकश लड़कियाँ कब औरत बन जाती हैं और कब माँ, वे जान ही नहीं पातीं? जंगल के सिपाही से बचकर निकलना तो मुश्किल ही है। गाँव के हाट-बाजार का ठेकेदार और भी जबर होता है। शहर के बाजार में सब्जी बेचने खातिर जगह घेरने के लिए, उन्हें दलालों की जमात भी उलांघनी पड़ती है। फिर ट्रक के ड्राइवर तो होते ही हैं मनमौजी। किसी पर मन आ गया, तो ले जाएँगे गाड़ी भगाकर और छोड़ भी जाएँगे वापिस गाड़ी भगाकर।

मौसी बिन ब्याहे ही लड़की से औरत बन गई थी। पत्नी का दर्जा तो नहीं, उसे सलीम की रखनी का दर्जा जरूर मिल गया था। सप्ताह में एक बार सलीम ट्रक में चढ़ाकर ले जाता। उसकी अपनी कुछ जमीन सिमरिया के आसपास थी। वहीं कुछ घरनुमा झोंपड़े भी बने हुए थे। एक बगीचा भी था। रात-भर वह वहाँ रहते। अगले दिन लौटते हुए उसे घर छोड़कर वह शहर चला जाता। रोज़ शहर में मौसी लकड़ी लेकर जाती तो सलीम उससे जरूर भेंट करता। कभी पाउडर तो कभी ब्लाउज, कभी साया (पेटीकोट), तो कभी कुछ पैसे ही थमा देता। बागीचे से आम भी ला देता। ब्याह की जरूरत कभी उसे महसूस ही नहीं हुई थी या वह भूल गई थी कि ब्याह भी जरूरी होता है। उसे सलीम से भरपूर प्यार मिल रहा था। बातों का धनी तो वह था ही पर वह पैसे की कमी भी नहीं रखता था। इज्जत तो अफरात थी उसके पास देने को भी, पाने को भी। अब अगल-बगल के छैलों की नज़र, ठाकुरों के नौजवानों की घूरती आँखें सलीम को देखते ही गायब हो जाती थीं। उसे अब एक जबर पहरेदार जो मिल गया था, नज़रों को रोकने वाला।

मौसी में माँ बनने की इच्छा बहुत तेज़ी से जग रही थी।

“अभी तो हम खुद ही बच्चे हैं, ज़िन्दगी बहुत लम्बी है। अभी तो मेरे अब्बा ही मेरे भाइयों की क्रिकेट की टीम पैदा किए जा रहे हैं। फिर तुम्हारा मोहना भी तो है, जिसे तुमने भाभी से गोद ले रखा है।”

यह कहकर सलीम जोर से हँसता और मौसी का मसविदा (प्रस्ताव) ठहाकों में उड़ जाता। माँ बनने का सवाल टल जाता। काफी दिन इसी तरह गुज़र गए।

पाँच

एक दिन हजारीबाग बस अड्डे पर ही मौसी को खोजते हुए सलीम आया और बोला “जल्दी चलो, मेरी माँ छोटे भाई को पैदा करते ही मर गई है। घर में कुहराम मचा है। अब्बा की भी हालत खराब है। उस मासूम बच्चे की देखभाल करने वाला कोई नहीं। भाभियाँ अपने बच्चों में उलझी हैं। तुम्हें बच्चा चाहिए था ना। चलो, मेरे भाई को पालो।”

मौसी सलीम के लिए कुछ भी करने को तैयार थी।

‘चलो’ कहकर मौसी ने अपनी पोटली उठाई और जल्दी-जल्दी उसके पीछे हो ली। उसने घर की दहलीज में पाँव रखा ही था कि सलीम के बड़े भाई ने, जो लगता है कि उसी की इन्तजार में थे, बच्चे को मौसी की गोद में डाल दिया।

“लो संभालो इसे। पाल दो इस बे-माँ के बच्चे को। अब तुम ही इसकी माँ हो। यह तुम्हारा ही घर है।” वह रुआँसा होकर धिधियाते हुए बोला।

मौसी ने बच्चे को गोद में उठाया और चूम लिया। बिल्कुल सलीम जैसा चेहरा, वैसी ही आँखें, वैसी ही सूरत। बच्चा पालना, मौसी के लिए मुश्किल नहीं था। भाभी के सभी बच्चे उसी ने पाले थे। मोहना को तो पैदा होते ही उसने अपने अँचरा में ले लिया था। उसके लिए घर की देखभाल करना भी बड़ा काम न था। वह तो अब तक दूसरों के लिए ही जीती रही थी। अपने लिए जीने का अवसर उसे कभी कहाँ मिला? उसने दूसरों के लिए ही सपने

सजाये थे। अपने लिए तो बस उसकी आंखों में एक सपना समाया था ‘बारात आएगी, दूल्हा आएगा, वह दुल्हन बनेगी, विदाई होगी।’

लेकिन इन सबके बिना ही सब-कुछ हो चुका था।

उसका दूसरा सपना था माँ बनने का। वह भी मोहना पूरा कर रहा था। रही-सही कसर आज पूरी हो गई। आज फिर उसे एक बच्चा मिल गया था। दूसरों के माध्यम से ही आज एक सपना और पूरा हो रहा था। उसकी कोख कब धारण करेगी उसका बच्चा? यह सवाल उसे बार-बार कचोटता था। पर इस वक्त तो उसे ऐसे लग रहा था जैसे उसी ने इस बच्चे को जना है जैसे प्रसव पीड़ा भी उस सामने पड़ी मरी औरत ने नहीं स्वयं उसी ने झेली है जैसे उस मरी औरत की रूह उसी में आ बैठी है।

उसे नहीं मालूम था कि जिस दहलीज़ में उसने पाँव रखा था उसी दहलीज़ के भीतर ही वह बँध जाने वाली है। बगल के कमरे में बूढ़े मौलवी साहब खोंख रहे थे। उस खोंखवाहट में कहीं रुलाई भी खोंख रही थी।

घर में एक बहस भाइयों में चल रही थी कि माँ के इन्तकाल के बाद बच्चा कैसे पले? बूढ़े अब्बा की देख-रेख कौन करे?

“बच्चा तो बेन्दी वाली (मौसी के गाँव का नाम बेन्दी था) देख लेगी, अब्बा की देख-भाल का जिम्मा सब भाभियाँ बारी-बारी मिलकर कर लें।” सलीम ने सुझाया। इसके लिए कोई तैयार नहीं हुई।

“हम लोगों से यह न होगा। कोई दाई-नौकर रख लो। जो खर्चा होगा अपना-अपना हिस्सा सब दे देंगे।” बड़ी भाभी ने सबकी तरफ से निर्णय-सा देते हुए कहा।

“इतने मर्दों के बीच कौन दाई रहेगी इस घर में?” छोटी बोली।

“हम लोग तो काम से बाहर निकल जाते हैं। कभी-कभी रात को भी नहीं आते। अब्बा की देखभाल के लिए तो किसी को जिम्मा लेना ही होगा। उन्हें तो अब रात को सूझने भी कम लगा है!” सलीम ने टोका।

“पर वे बच्चे तो पैदा किए जा रहे थे न। तब कम नहीं सूझा उन्हें। इसी में तो मर गई अम्मा। वरना उसके मरने के दिन थे क्या अभी?” छोटी भाभी ने

ताना देते हुए फुसफुसाकर बड़ी भाभी के कान में कहा। पर वह ऐसे फुसफुसाई थी कि मरदों ने भी सुन लिया था। दरअसल मरने वाली छोटी भाभी की खाला थी।

“क्या बकवास करती हो भाभी। बड़ों के लिए ज़रा भी लिहाज़ नहीं। सब अदब ताक पर रख दिया क्या?” सलीम घुड़का।

“इतना दर्द है तो काहे नहीं ब्याह देते अपनी इस बेन्दी वाली मुंडियाइन को अब्बा के साथ? बेटवा भी पाल देगी और अब्बा और तुम्हारी दोनों की देखभाल कर लेगी।” छोटी मुँह बनाकर बोली।

सलीम गुस्से से उठकर जाने को ही था कि बड़े भाई ने हाथ खींचकर बिठाते हुए कहा “तैश में मत आओ, ठंडे दिमाग से सोचो, क्या गलत कह रही है, तेरी छोटी भाभी? बेन्दी वाली को तो बसा-बसाया घर मिल जाएगा। अब्बा के मरे बाद खेती-बाड़ी अगोरने के लिए उसे सिमरिया की जमीन पर बैठा देंगे। ये आदिवासी लोग तो खेती के कीड़े होते हैं। इनकी औरतें तो मरदों से भी ज्यादा काम करती हैं। मरद तो महुआ पीके पड़ा रहता है। कमा के तो ये ही लाती हैं। अरे औरत को क्या चाहिए? दो जून खाना, कपड़ा-लत्ता और रहने को घर। सो इसमें तो हम कभी कमी नहीं होने देंगे। मन बहलाने को उसे बच्चा भी मिल गया है। पालेगी, इस छोटे शहजादे को।”

सलीम को तो मानो काटो तो खून नहीं! कैसे कहता वह कि वह खुद उससे निकाह पढ़ना चाहता है। वह तो बच्चे की हालत देखकर उसकी देखभाल करने के लिए, उसे लाया था, अब्बा से निकाह पढ़ाने के लिए नहीं।

सलीम घर छोड़कर भाग गया। मौसी बच्चे में मग्न हो गई। वह प्यार से उसे पालती। अब्बा को भी हुक्का-पानी देती और खाना खिला देती। उसने भाई-भाभी के पास खबर भेज दी कि उसे शहर में काम मिल गया है। वह गाँव नहीं आएगी। मोहना की चिन्ता उसे जरूर सता रही थी, पर उसे भाभी सँभाल लेगी, सोचकर वह चिन्ता को झाड़ देती। उसने कुछ खिलौने, कुछ बताशे, कुछ कपड़े, मोहना के लिए भिजवा दिए। एक किताब भी सलीम से कहकर पढ़ने के लिए भेज दी। उसने खुद-ब-खुद घर का कामकाज भी सँभाल लिया, जैसे

यह उसी का फर्ज हो, उसी का काम हो और उसी का घर हो। दस्तूर के अनुसार अम्मा का चालीसवाँ पूरा हुआ। मातम मनाने वालों का आना बँद हो गया। बेटियाँ भी रो-धोकर अपने-अपने घर लौट गईं। रह गए बेटे, उनकी बहुएँ, अब्बा, बच्चा और मौसी। बच्चे का नाम प्यार से सबने 'शहजादा' रख दिया था। मौसी उसे 'शादा' कहकर बुलाती थी।

एक रात फिर घर में भाइयों की मजलिस जमी। सलीम भी लौट आया था। इस मजलिस में मौसी भी शामिल थी। अब तक वह सबसे मिलजुल गई थी और सब बहुओं ने भी उसे मन-ही-मन छोटी सास और बेटों ने माँ मान लिया था। माना नहीं था, तो बस सलीम ने। वह उससे कटा-कटा रहता। कैसे उसे माँ मान सकता था वह, जिसके साथ उसने प्यार-भरी रातें बिताईं जिन्दगी के सपने सजाए?

बड़े भाई ने मौसी के आगे प्रस्ताव रखा "देखो, तुमने इस बच्चे को जान बख्शी है। जनमने वाली माँ हमारी अम्मा तो मर गई, अब इसे पोसने वाली असली माँ तो तुम ही हो। उधर अब्बा की हालत भी नाज़ुक है। माँ के गुज़र जाने के बाद वे निहायत अकेले पड़ गए हैं। तुम उनकी देखभाल तो कर ही रही हो। हम लोग चाहते हैं कि तुम बाकायदा इस बच्चे के साथ हमारी माँ बनकर भी रहो। हमारे अब्बा की देखभाल दाई-नौकर की तरह नहीं, उनकी बराबर की साझेदार, उनकी बीवी बनकर करो। उनसे निकाह कर लो। मेहर की जो रकम माँगोगी देंगे।"

मौसी अवाक्! क्या कहे? मौसी ने सलीम की तरफ बड़ी उम्मीद भरी नज़रों से देखा। सलीम से उसकी नज़रें मिलीं। सलीम की आँखों में एक बेबसी या यूँ कहा जाय एक बेवकूफ़ी-सी झलकी। सलीम ने नज़रें फेर लीं और उठकर जाने लगा। बड़े भाई ने उसे हाथ पकड़कर बिठाते हुए कहा

"कहाँ जाते हो? भागने से काम नहीं चलेगा?"

मौसी की नज़रें अब भी सलीम पर टिकी हुई थीं। वह उसके मुँह से कुछ सुनने की उम्मीद ही नहीं, विश्वास भी रखती थी। उसके साथ बिताईं वे रातें उसकी आँखों के आगे घूमने लगीं। उसे लगा, उसकी जिन्दगी का पहिया जैक

पर टिके ट्रक के पहिए-सा अपने ही गिर्द घूम रहा है, जैसे उसमें आगे बढ़ने की कुव्वत ही नहीं है या ट्रक का गुल्ला ही टूट गया है। अब वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे लगा, उसकी जिन्दगी थम गई है। बेन्दी के जंगल में आग लग गई है पेड़ जल रहे हैं और वह आग की लपटों में घिर गई है। सब रास्ते बन्द हैं। उसे लगा जैसे पहाड़ ही दरक गया है। मिट्टी भसक रही है। उसकी देह मिट्टी से ढँकी जा रही है। उसका दम घुट रहा है। उसे लगा जैसे सलीम वहीं बगल में खड़ा है वह मदद के लिए उसकी तरफ हाथ बढ़ा रही है पर सलीम ने उसका बढ़ा हाथ नहीं थामा मुँह मोड़ लिया और अब वह दूसरी ओर चला जा रहा है।

बड़े भाई ने कुछ भाँपते हुए कहा “जवानी के जोश में बहुत कुछ हो जाता है, हम नहीं समझते क्या? पर जिन्दगी की हकीकत कुछ और होती है। सवाल है खानदान का। अब्बा हज़ूर घुट-घुटकर मरें, ऐसा तुम नहीं चाहोगे। हम किसी चीज़ की कमी न होने देंगे इनको। अब्बा की सेहत के लिए एक अदद औरत उनके साथ होना जरूरी है। उन्होंने हमारी अम्मा के साथ ही पूरी जिन्दगी बिता दी। वह उसके जीते-जी तीन शादियाँ और कर सकते थे। हम उन्हें अब बुढ़ापे में औरत से महरूम रखें, ठीक नहीं। हम इनको माँ का पूरा रुतबा देंगे।”

ऐसे लगता था जैसे फैसला उन्हीं को करना था मौसी की राय लेना जरूरी नहीं था उसे तो बस मानना भर था। ‘हाँ’ करनी थी बस। जैसे ‘मंजूर है’ का जुमला सुनने को आतुर था पूरा कुनबा! औरत पर हमेशा कुछ-न-कुछ थोपा ही जाता है। उसकी मरज़ी पूछने का एक रिवाज़, एक रस्म तो है मुस्लिम समाज में पर ये सब बस सूचना के बतौर निभाई जाती है। निकाह से पहले औरत से हाँ या ना में जवाब लिया जाता है। पूर्व-निर्धारित फैसले के अनुसार औरत को ‘हाँ’ कहनी ही है क्योंकि उसके अब्बा-अम्मी, भाई और समाज की इज़्जत उसके साथ जुड़ी होती है। सबसे बड़ी चीज़ है उसकी अपनी जिन्दगी की हिफाजत सुरक्षा। वह भी उसकी इस ‘हाँ’ से जुड़ी होती है चूँकि वह खुद इसके काबिल न होती है न समझी जाती है और न ही उसे काबिल होने का

मौका दिया जाता है। इसलिए 'हाँ' तो उसे करनी ही होती है। पूछना एक रस्म अदायगी भर होती है। लेकिन मौसी तो आदिवासी समाज की मुक्त महिला थी। वह इससे बँधी न थी। औरत के नाते समर्पण का संस्कार तो उसमें भी था लेकिन उसके आदिवासी आदिम समाज के मूल्यों के नाते, आज उसके सामने एक बच्चे की जिन्दगी का एक अहम् सवाल जुड़ गया था। उसने बच्चे को पालने की ज़बान दे दी थी। यह 'ज बान', यह 'वचन' उसके लिए अहम् था। मूल्यों का आदर ही आदिवासी औरत की सादगी का परिचायक है। यही आदिवासी समाज को दूसरों से अलग करता है। उसे सलीम से भी जो उम्मीद थी वह भी बुझ गई थी। मनुष्यजन्य स्वभाव के नाते शायद निराशाजनक स्थिति में विराग की, त्याग की भावना भी उसमें भर गई थी। मौसी को निर्णय लेना था। उपर्युक्त तीनों मनःस्थितियों का दबाव उसे दबोच रहा था 'ज़बान के दबाव' का, 'बच्चे की जिन्दगी' का, 'सलीम की चुप्पी' का। मौसी ने गोद में लिए बच्चे को देखा उसमें सलीम का चेहरा फिर उभर आया।

सलीम उठकर चला गया। जहाँ वह बैठा था' वहाँ एक बड़ा-सा रहस्य प्रश्नवाचक चिह्न बनकर उभर गया। वह प्रश्नवाचक चिह्न फिर एक फाँसी के फँदे में बदल गया, जो मौसी की गर्दन में लटक गया। हिलने-डुलने से फँदा जोर से कस जाएगा और खत्म हो जाएगी वह, यह उसकी समझ में आ गया। इसलिए वह स्थिर हो गई ठहर गई उसकी जिन्दगी वहीं की वहीं जैसे कि उसे अपने लिए जीना ही नहीं था। इसलिए स्थिर रहना था ताकि फँदा न कसे और वह गले में 'शहजादे' के फँदे को लटकाए जीने लगी। सलीम अब शहजादे में बदल गया था।

छह

अगले दिन पाँच हजार मेहर का कागज़ लिखवा कर मौसी का निकाह अब्बा से करवा दिया गया। सलीम निकाह से पहले घर छोड़कर चला गया था। निकाह के दस दिन बाद लौटा। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह उसे क्या कहकर पुकारे? किन नज़रों से देखे? मौसी भी दुविधा में थी। कितना प्यार दिया था सलीम ने उसे। वह भूल नहीं पा रही थी, न ही भूलना चाह रही थी। उस प्यार की याद उसे अकेले में सुख देती थी। उसने सलीम को देखा और गोद में लिए बच्चे को चूम लिया। दो बूँद आँसू टपक गए बच्चे के होंठों पर, जिसे वह चाटने लगा और मुँह बनाकर हँसने भी लगा। सलीम के लिए सारा प्यार उसने इस बच्चे पर ही उड़ेल दिया था।

उस रात जब अब्बा के कमरे में सोने गई तो उसे लगा कि जैसे वह किसी मकड़े के जाल में फँस गई है। मकड़ा अपने सूखे-सूखे, अकड़े-अकड़े तार सरीखे पंजे उसकी तरफ फैलाए बढ़ रहा था। वह जितना दूर भागती उतना ही मकड़े का जाल उसे उलझाए जा रहा था। इस बीच बच्चा चिल्ला उठा। उसे चुप कराने के बहाने वह कमरे से बाहर निकल आई, लेकिन बकरे की माँ के दिन खैर मनाएगी?

“एक न एक दिन तो उसे जिबह होना ही। जितने दिन टल जाए वह घड़ी।” सोचकर वह सिहर उठती।

उस रात भी वह इसी तरह बच्चे के रोने पर अब्बा के कमरे से बाहर खड़ी बच्चे को चुप करा रही थी। बच्चा रोए जा रहा था। वह उसे लेकर छत

पर चली गई। चाँद पूरा-का-पूरा रोशन था। बच्चा चाँद को देखकर हँसने लगा। मौसी न जाने किसकी इन्तज़ार में थी। उसका मन चाँद से नहीं भर रहा था। वह चाँद नहीं, सितारों की खोज में थी। सितारे! दो सितारे ध्रुव तारे की तरह चमकते...। मंगल की तरह दहकते...। दो सितारे जो आदिम आँखों में चमकते हैं। सीढ़ी के ऊपर वाली कोठरी में अँधेरा था। दो सितारे उसे घूर रहे थे। न जाने कौन-सी ताकत उसे उसी ओर लिए जा रही थी, जहाँ से वे सितारे घूर रहे थे। जैसे-जैसे वह नज़दीक होती गई, वह सितारे एक माथे पर चिपके नज़र आए। माथा एक चेहरे पर चम्पाँ था और चेहरा एक आकृति पर जो दोनों बाँहें फैलाए उसे आगोश में भर लेने को बेचैन थी। वह खिंचती चली गई। बच्चा कन्धे से सटा, पीछे चाँद को देख कर मुस्करा रहा था। वह दो सितारों को देख मुग्ध-सी जड़ बनी जा रही थी। दो बलिष्ठ बाँहों ने उसे कस लिया। उसके दो होंठों पर दो आग के अंगारे चिपक गए।

“ओह! मैंने क्या किया? ये गुनाह है! ओह! क्या करूँ मैं? बताओ न तुम! जिस मुँह से तुम्हें महबूबा कह चुका हूँ, उसी से ‘माँ’ कैसे कहूँ? जाने दो मुझे। मैं तुम्हारा गुनहगार हूँ और खुदा का भी। मेरे लिए तो दोज़ख में भी जगह न मिलेगी। मैं ये शहर ही छोड़ कर चला जाऊँगा।” वह आकृति बुदबुदाई।

“जे दिन आपन महबूबा के निकाह अपन बप्पा संग कराया रहा, क्या ऊ गुनाह नाय था? ई जो तू अब झेल रहल है, का तुमरे दोज़ख की आग से कम है? तुमरा खुदा का करतै, हम नाय जानब? पर हम इतना जरूर जानत हैं कि हमर बोंगा तोके माफ नाय करब। ना तोके ना हमर के। ई बच्चा मोर गोद में नाय देयल होते, ते हम घर से भाइग गेयल होत। हमर के तोर चेहरा ई बचवा में दीखे है, एही के (इसे ही) चूम के हम तोहरा चूम लेब हैं। एही हमर बेड़ी बन गेल है।”

आकृति फिर झुकी “तो क्या करूँ?”

“छोड़ा ई सब गुनाह के बातां। गुनाहगार तो तोर खुदा भी है और हमर भी। एही खातर तो दुनिया ऐसे गुनाहों से भरल है। अब एक गुनाह औरो सही।” मौसी ने कहा।

आकृति ने उसके मुँह पर हाथ रखते हुए कहा “ऐसा मत बोल, यह

कुफ्र है। ये खुदा के खिलाफ बगावत है उसकी तौहीन है। हम पर कहर गिरेगा खुदा का।”

“छोड़ा ई कुफ्र-कहर की बातों। कल जब मोर बाप जैसन तोर बाप, हमनी से ओ करतै, जे ऊकर खून, ऊकर बेटा, करत रहे, तो तुमरे खुदा के कहर किकरा पर गिरतै? तोर पर? तोर बाप पर? या हमर पर? गिरे के तो चाही तुमरे बाप पर या तुमरे भाइवन पर! ई सब में ना हमरी मरजी रहल, न तोरी। हमर के तो फँसा देले ऊ सबनी मिलके। पर न्याय नाय होत ई दुनिया में! खुदा भी आपन (अपना) कहर या हम पर गिरौते (गिराएगा) या तोरा पर। हम ब्याहल हैं दोनों बाप और बेटा से एके साथ। तू भी तो चुप रह गेले। अब और का गिरते कहर। गिर तो गेलेय। हम दोनों झेल रहल हैं सज़ा! ऊ बूढ़ के का फ रक पड़तै? ऊ तो मजे में है। मर तो हमनी रहल हैं। खैर, तोर मरज़ी! गुनहगार समझ के हमर के हाथ मत लगा! हम कोउनो गुनाह नाय करले। हमर संग प्यार करेके होत तो बोल! गुनाहगार है तो आपन खुदा से माफ की माँग और फ कीर बन जा।” मौसी ने अलग होते हुए कहा।

आकृति चुप! फिर वह झुकी और मौसी को आगोश में भरकर...

रात देर गए तक दोनों पुरानी यादों में खोए, नई यादें गढ़ रहे थे। बच्चा बगल में सोया था। पौ फटने से पहले उठकर मौसी अब्बा के कमरे में चली गई।

“कहाँ थी?” मौलवी ने पूछा।

“बच्चा रो रहा था, इकरा छत पर ले गयल रही। ठंडी हवा में आँख लग गेल। दोनों जन सो गेयल। अब नींद टूटले, तो चल अयले।” उसने सोए हुए बच्चे को पलंग पर लिटाते हुए कहा।

“इधर आओ,” अब्बा ने जैसे फ तवा सुना दिया।

वह बाँदी-सी उसके पास चली गई।

“बैठो” अब्बा ने दूसरा फ रमान सुनाया। वह बैठ गई।

“लेट जाओ” अब्बा ने हुक्म दिया। वह लेट गई।

अपने कमज़ोर सूखे थरथराते हाथों से अब्बा ने उसकी सख्त-ठंडी देह को छुआ। जैसे असंख्य चींटियाँ रेंग गई उसकी देह पर। अब्बा के हाथ जैसे-जैसे उसकी देह पर दौड़ते, वह उतना ही सिकुड़ती जाती। हाथ तेज़ी से

दौड़ने लगे थे अब। वह समझ रही थी कि उसके जिबह होने की घड़ी करीब आ रही है। बकरी आखिरी समय में मिमियाना बंद कर कातर नज़रों से कसाई को देखती है। छुरी धीरे-धीरे उसकी गर्दन हलाक करती है। खून उसकी गर्दन से कतरा-कतरा टपककर उसके प्राण निचोड़ कर बाहर फेंक देता है लेकिन मौसी हलाक होने से पहले ही बर्फ की सिल्ली की तरह ठंडी हो गई थी। अब्बा मरी हुई लाश को जिबह कर खरटे ले रहे थे।

हर चौथे-पाँचवें दिन वह दो सितारों की खोज में रात को छत पर पहुँच जाती और भोरे मुँह अँधेरे उन सितारों की छाँह में लौट आती। उनकी रोशनी उनके ठंडे जिस्म में आग भर देती थी। जिन्दगी इसी तरह चलने लगी। अब्बा की और बच्चे की देखभाल में वह कोई कोर-कसर न छोड़ती। सलीम इस दोहरी जिन्दगी के अहसास और अपराध-बोध के बोझ से भागकर काम की खोज में असम चला गया। साल में एक बार छुट्टी पर आता। साल-भर मौसी उन सितारों को देखने छत पर हर तीसरे-चौथे दिन जाती, यह जानते हुए भी सितारे नहीं दिखेंगे। वह जब लौटता तो साल-भर की जलन पी लेता और भर देता फिर साल भर तक इन्तज़ार की कुव्वत।

इसी तरह दिन बीते, महीने बीते और साल बीत गए। शहजादा अब स्कूल जाने लगा था। घर पर मोहना को भी मौसी ने स्कूल में दाखिल करवा दिया था। मौसी की दोहरी जिन्दगी एक त्रिकोण में घूमती रही। सलीम-अब्बा-शहजादा। त्रिकोण को मौसी अपने दिमाग में फिट करती तो सलीम का कोण ऊपर रहता, नीचे दोनों पायों पर अब्बा और शहजादा। एक बाप जैसा पति एक प्रेमी जैसा पुत्र और ऊपर का कोण सलीम प्रेमी जो पति न बन सका। प्रेमी जिसकी शक्ल पुत्र जैसी थी। प्रेमी जो अब्बा का पुत्र था। प्रेमी जो मौसी का था। दोनों पाएँ ऊपर के कोण में मिलते और ऊपर के कोण का दबाव दोनों नीचे के पायों पर पड़ता।

एक दिन अब्बा चल बसे। सलीम परदेस में ही था। खत लिखा, तार भेजा पर कोई जवाब नहीं। सलीम नहीं पहुँचा अब्बा की मय्यत पर! क्यों नहीं पहुँचा? एक दूसरे से तरह-तरह के सवाल पूछे जा रहे थे। लोग तरह-तरह के जवाब अपने-अपने ढंग से दे रहे थे। पर मौसी से कोई पूछने की हिम्मत न

कर रहा था। मौसी किससे पूछे? सवाल भी अहम् था। मौसी खुद से पूछ रही थी क्यों नहीं आया तेरा सलीम? खुद ही जवाब खोजती पर कोई जवाब नहीं मिलता। जवाब मे मिलती थी आशंका। उसका दिल धक्क-सा हो जाता कुछ सोचकर! क्या सोचकर? वह ज़बान पर न लाती न दिल में किसी ऐसे-वैसे ख्याल को फटकने देती। पर ख्याल था कि कबूतर की तरह फड़फड़ाकर मन के इस रोशनदान से उस रोशनदान तक उड़-उड़ कर घूमता रहता उसके मन की छत के इस पार से उस पार।

सलीम के इन्तज़ार में साल बीत गया। सिमरिया की जमीन पर वह कभी-कभी जाती। वह भाई-भाभी के पास भी जाकर कभी-कभी रहने लगी थी। मोहना को मिशन स्कूल में पढ़ने के लिए दाखिल करवा दिया था। उसकी स्कूल की ड्रेस भी सिलवा दी थी। अब्बा की मौत के बाद शहजादे को छोड़कर अब उसकी जरूरत किसी को न थी, इसका एहसास उसे हो रहा था। वह एक दाई नौकर बनकर उस घर में नहीं रहेगी, यह सब जानते थे। बिना कहे वह मालकिन थी। यह दर्जा उसे सलीम ने ही दिया था और दिलाया था घर में। पर अब तक सलीम ही नहीं आया था।

एक दिन सलीम तो आया पर साथ में एक खूबसूरत औरत भी लाया। मौसी के मन की शंका का कबूतर पंख फड़फड़ाने लगा।

“कौन है ई साथ में?”

सलीम मौसी के सामने नहीं आया। आई वह खूबसूरत औरत।

“सलाम अम्मा!” वह बोली।

मौसी क्या जवाब दे? उसकी समझ में न आ रहा था।

“तो यह सलीम की कनिया (दुलहिन) है?” पता नहीं उसने किससे पूछा।

उस खूबसूरत औरत ने जवाब दिया “हाँ, अम्मा।”

मौसी की गोद में शहजादा बैठा था। वह शहजादे को गोद से उतार वह खड़ी हो गई। उसकी आँखें सलीम को खोज रही थीं। मौसी ने उस खूबसूरत औरत से कहा “बैठ! ले सँभाल! शहजादा अब तुमरे सुपुर्द है। ई घर में औते ही (आते ही) बेटा मिल जैते है। जब ई जन्मले तबे से हम पोसले रही इकरा अब तू इकरा जवान कर।”

फिर शहजादे से बोली “देख, सुन्दर-सुन्दर माँ लायल है तोर भैया तोर खातर! हम तो काली-काली रहल न। ई तो गोरी है। जा अब उकरा पास रह।” मौसी ने निर्णय-सा देते हुए कहा।

शहजादा काली और गोरी का भेद न जानता था। उसने तो मौसी से हमेशा वह ममता पाई थी जो न काली होती है, न गोरी। जो बस वश में कर लेती है प्यार करती है प्यार पाती है प्यार बाँटती है। उसने तो मौसी की आँखों में हमेशा स्नेह की एक धारा ही बहती देखी थी, जिसकी कोई रंगत नहीं थी। उस खूबसूरत औरत की आँखों में वह धार शहजादे को नहीं दिखी।

आने के बाद सलीम कभी भी मौसी के सामने नहीं आया। वह रात को छत पर गई। घंटों बैठने के बाद भी वह दो सितारों वाली आकृति नहीं दिखी। उस दिन तो चाँद भी नहीं था आकाश में। वह उतरी। कमरे में गई। अपनी पोटली उठाई और अपने गाँव चल दी। किसी ने टोका भी नहीं।

सलीम ने कहलाया था कि वह बतौर रखनी, अभी भी उसे रख सकता है पर निकाह कर घर में नहीं ला सकता।

मौसी हँसी और कहा “हम कौनो के रखनी नाय बनब।”

सलीम यह जानता था कि अब्बा की मौत के बाद चाह कर भी वह मौसी से शादी नहीं कर पाएगा। कर लेगा तो न समाज उसे कबूल करेगा, न खुद उसका मन। वे सब उसका मज़ाक उड़ाएँगे, जिनके बीच उसे रोज़ रहना-उठना-बैठना है। वह सोचता काश, वह भी जंगल का जीव होता या जंगल में रह रहा होता? जहाँ यह सब सवाल न पूछे जाते या उठाए जाते। इसीलिए वह निकल करके ही घर लौटा था ताकि मौसी के सवाल और उनके जवाबों और मौसी की उम्मीदों पर रोक लग जाए। सलीम की ब्याहता एक जवाब के रूप में मौसी के सामने खड़ी हो गई थी। मौसी एक प्रश्न थी। मौसी के गले में फाँसी-से लटकते प्रश्नों के फंदों को ‘जवाब’ के इस चाकू ने काट दिया था। मौसी अब आज़ाद हो गई थी। उसकी स्थिर जिन्दगी में हरकत आ गई थी। उसका ठहराव बह निकला था, इसलिए वह अब सवालों की दलदल में फिर से फँसना नहीं चाहती थी। बस, वह जीना चाहती थी बहना चाहती थी, भले कोई चाहे या न चाहे। वह, घर के उस दायरे में बँधी एक पोखरी-सी जिन्दगी नहीं

जीना चाहती थी जिसका पानी गाद से भरकर गँदला हो जाता है जिसके किनारे गर्मी से धूप से सूखने लगते हैं। वह स्वतः स्फूर्त जल-स्रोत की धार बनकर नदी-सी अबाध बहना चाहती थी जो तटबन्धों को तोड़ देती है। इसलिए मौसी अब सवाल नहीं पूछना चाहती थी। उसका मन भी उसे कुछ पूछने से मना करता था। उसने कुछ भी नहीं पूछा।

एक अरमान खत्म हो गया था मौसी की जिन्दगी का। बिना सवाल किए, बिना जवाब लिए, उसकी जिन्दगी का एक वरक उलट गया था। दूसरा कोरा पन्ना सामने था, जिस पर लिखने को बहुत कुछ बाकी था! कौन लिखेगा? सवाल यही था! नया अध्याय शुरू होना था फिर से। अध्याय तो रोज़ बदलते हैं, हर औरत की जिन्दगी में। एक के बाद एक आते हैं जाते हैं! अपनी जिन्दगी के वरक पर औरत स्वयं नहीं लिखती, दूसरे लिखते हैं। वह तो लिखी जाती है पन्ने पलट जाते हैं। दूसरा अध्याय शुरू होता है। लिखने वाले बदल जाते हैं! कोई और आ जाते हैं! कमल-स्याही और हाथ भी और! पन्ना भर बस उसी की जिन्दगी का होता है। वह खुद तो बस लिखी जाती। वरक पर स्याही फेंककर लिखावट खत्म करने का प्रयास भी होता है या पन्ना फाड़कर ही लिखे हुए को भुलाने या मिटाने का भी।

औरत चाहे किसी भी वर्ग की हो, वर्ण की हो, कैसी भी धार्मिक, सामाजिक स्थिति की हैसियत वाली हो उसे अपना फैसला करने का हक देना, समाज अपनी तौहीन मानता है। वह उसका पीछा करता है, उसे झुकने पर मजबूर करता है। मध्यम वर्ग की औरतों में यह सब कुछ सामाजिक सुरक्षा के नाम पर होता है, तो बड़े वर्ग की औरतों में सुरक्षा के साथ-साथ अहम्, आन-बान, वंश, संस्कार और प्रतिष्ठा के नाम पर। निम्न वर्ग में आर्थिक परिस्थितियाँ उनकी मजबूरी होती हैं। लेकिन सभी वर्गों में औरत को झुकाने में, उसे तोड़ने में, बाप-भाई के साथ-साथ माँ-बहन, सास-ननद भी शामिल होते हैं या कर लिये जाते हैं। औरत के समर्पण के लिए अपराध-बोध सबसे बड़ा हथकंडा है।

सात

मौसी अब मोहना की देखभाल में व्यस्त रहने लगी। वह केवल 'माँ' बनकर रहने लगी थी पर उसके अन्दर की औरत उसे कचोटती रहती थी। मौसी के हाथ में जो पैसा था वह भी खर्च हो रहा था। आमदनी का और कोई स्रोत नहीं था। शहर जाकर मजदूरी करना भी अब उसके लिए मुश्किल था। बस स्टैंड, मुहल्ला, बाजार सब उसे 'मालकिन' की हैसियत से जानने लगे थे। वह दूसरी किसी हैसियत को कबूल नहीं कर पा रही थी। कैसे किसी और के घर नौकरी करे? सलीम के अब्बा के पैसे के कारण गाँव में मौसी की प्रतिष्ठा काफी बढ़ गई थी। कई दिक्कत मनचले यह भी कहते थे

“बूढ़े को ज़हर देकर मार देगी और सब धन लूट लाएगी।” बिना माँ के बच्चे को पालने और खुद माँ बनने की आसक्ति की हद तक जा पहुँची उसकी भावना को, समझने वाले कम ही थे।

“चलो भटकने से तो अच्छा हुआ कि कहीं ठिकाने लग गई।” ज्यादातर लोग ऐसे ही कहते। जैसे कि नाव का ठिकाने लगना जरूरी है। चाहे मगरमच्छ और बाघों से भरे जंगल का किनारे ही क्यों न लगे नाव पर किनारे लगना तो चाहिए ही। डूबना ठीक नहीं प्यार से भरे शीतल जल में भी नहीं। भले जिन्दगी-भर किनारों की खोज में भटकती रहे नाव! नाव भटकती रहे किनारे लगे, मँझधार में डोले, फिर तट पर आ लगे, उन्हें इसी में रस मिलता है। इसी मानसिकता के लोग मौसी की 'नाव' को भाई-भाभी के किनारे लगी देख, अपने गाँव या समाज के तट पर खड़ी पाकर उसे फिर मँझधार में ठेले जाने की इन्तज़ार में थे। बड़ी शिद्दत से बाट जोह रहे थे वे कि कब

मँझधार में फँसे उसकी नाव ताकि जरूरत पड़ने पर वे भी दो-चार चप्पू चला कर या ठेल कर उसे चलता करें कि वह यह तट छोड़ किसी दूसरे तट की खोज में निकल जाए।

मौसी अब मोहना पर पूरा प्यार उड़ेलने लगी थी पर उसे अपना पेट भी पालना था। अपना भी और मोहना का भी। भाई-भाभी ने उसे कह दिया था कि वह अपना सहारा खुद खोजे। सिर्फ गाँव के महुआ पर गुजर नहीं हो सकती थी। कई हिस्सेदार थे उसमें सिपाही, रेंजर, मुखिया, नेता और रंगदार। जमीन इतनी थी नहीं कि पेट पल जाए। किसी के खेत पर ही वह खट सकती थी। सो मौसी ने अपने गाँव के ठाकुरों के खेत पर खटना शुरू कर दिया था। गाँव के ठाकुर पहले जमीन वाले जमींदार थे, अब केवल ठाकुर भर थे। 'मूँछ' का ठाकुर लाठी भँजाऊ ठाकुर जात का ठाकुर ठाकुर यानी राजपूत! खेत तो उनके लगभग सब आन-बान बचाने में बिक गए थे। थोड़ी बहुत ज़मीन बची थी पर बाकी थी 'आन' भरपूर आन! 'बान' अब जाती रही थी। कभी-कभी 'आन' 'जुल्म' बनकर उभर आती थी कमजोर पर जुल्म...औरत पर जुल्म...दलित पर जुल्म...मजूरा पर जुल्म!

घर-बाड़ी बची थी। बड़े-बड़े दालान थे। कुछेक महुआ-सखुआ के गाछ...बस यही रह गई थी 'रजपूतन' की पूँजी। राजपूत 'महरारू' (औरत) खेत पर खट नहीं सकती थी। जब राजपूत मरद ही खेत में हल नहीं नाद सकता, जाति चली जाने के डर से तो उनके घर की महरारू कैसे रोपनी, कटनी, निकौनी करती? सो 'बान' (आदत) ने सहारा दिया। रखनी रखने की 'बान' तो पुरानी थी। रिवाज़ भी था। सो एक-एक रखनी रख ली। ऐश भी, खेत का काम भी। कोई माझी, कोई भुँईनी, तो कोई चमाइन, दुसाधिन या फिर मुंडा। गाँव में जिस जाति के टोले, उसी जाति की रखनियाँ। इन रखनियों की औलाद भी बढ़ती जा रही थी। वह ठाकुरों की जमीन पर झोंपड़े 'छान-छानकर' बस रही थी। कुछ बाबुओं की अपनी मूल जाति के बाप की औलाद भी होती थी। बाकी सब मिली-जुली पर चेहरे फ रक-फ रक। यहाँ तक कि रंग भी फ रक-फ रक हो जाते थे। बाप का नाम मूल जाति के बाप का ही रहता। ठाकुर अपना नाम उस औलाद को न देते। उसके लिए उन्हें राजपूत माँ की कोख चाहिए। भला भुइयाँ या अन्य छोटी जाति की कोख से जन्मी औलाद को ऊँची

जाति के बाप का नाम कैसे मिलता? उनके झोंपड़े में पूरी-पूरी रात बिताते थे बाबू साहब और रखनियाँ अपने-अपने मरदों के साथ इनके खेतों में अपना पूरा-पूरा दिन खटते-खटते गुज़ार देती थीं।

इसके साथ बाबू साहिबन का हँड़िया-महुआ सब चलता था, बस उनके घर का पानी नहीं चलता था। माझी, मुंडा, भुइयों, दुसाध आज भी इनकी ड्योढ़ी के अन्दर नहीं चढ़ सकते थे पर औरत...? जहाँ उसके भोग लगाने का सवाल हो, तो चिथड़ों में लिपटी, गन्दगी से सनी जटा-जूट औरत भी ग्राह्य हो जाती है। इन बड़े लोगों के समाज में। मूल्यों को अपनी सुविधानुसार घटाने-बढ़ाने, चढ़ाने-उतारने, कसने और ढील देने में बहुत सक्षम है, यह उच्चवर्गीय, उच्चवर्णीय समाज। इन बड़ी जाति वालों ने परिकथाएँ गढ़ रखी हैं। जिस औरत के हाथ का पानी पीना इन्हें धर्म से च्युत करता है, उसके हाथ से दारू, हँड़िया, महुआ पीने में इन्हें ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं होती। शायद इसलिए कि वह पानी नहीं नशा है। धर्म भी तो एक नशा ही है। इनका धर्म पानी पर ही अपना पूरा रौब गाँठता है। पानी निःशुल्क है। प्रकृति-प्रदत्त है। जीवन देता है...जिन्दगी बचाता है। इसीलिए वर्जनाओं के दायरे में लक्ष्मण रेखाओं की सीमाओं में बाँध दिया गया है पानी।

शौक, ऐय्याशी तो सदैव ही धर्म के बन्धनों से मुक्त रहे हैं। बस, जिन्दगी को ही धर्म ने अपनी बेड़ियों में जकड़ा है। उसी तरह औरत के सहवास को यह कैसे छोड़ देते भला? किसी भी जाति की औरत हो, वह सर्वदा ग्राह्य रही है। उसके लिए केवल छूट ही नहीं, उसे तो इन्होंने अपने अधिकार के रूप में वर्णित किया है। हाँ, उससे पैदा औलाद को त्याज्य करार दिया है। वह माँ की जाति में ही रहेगी। उनके खेतों में कमिया बनकर खटेगी पर उसे उसके असली बाप की जाति में शामिल नहीं किया जायेगा। हालाँकि इनका पूरा समाज पितृ-प्रधान है। वह औलाद इनकी सम्पत्ति की भागीदार नहीं हो सकती। इसके लिए उसे सवर्ण-कोख ही चाहिए। अपने ही गोत्र की, जाति की कोख। अजीब दर्शन है यह, इन धर्म और समाज के लठधरों का रंगरेजों, रंगबाजों, रंगधरों का! ये ठेकेदार भी नहीं हैं। ठीका लेने वाले तो व्यवसायी होते हैं। उन्हें जिम्मेवारी का एहसास भी होता है। पर रंगदार का तो बस अधिकार ही अधिकार होता है, अथाह अधिकार! दायित्व कुछ भी नहीं।

आठ

मौसी के लिए भी एक ऐसा प्रस्ताव आया। कोलियरी में खटने वाले एक नेताजी हैं। मजदूर भी हैं और मजदूर-नेता भी। चौपारण के बाबू साहब हैं। पहले घाटों में टाटा कम्पनी में थे। उन्होंने रेणुकाजी के साथ यूनियन में, ठेकेदारी मजदूरों को स्थायी करने और गाँव के लोगों को जमीन के बदले नौकरी देने की लड़ाई लड़ी, तो कम्पनी ने उन्हें डिसमिस कर दिया। 'राममनोहर लोहिया श्रमिक उच्च विद्यालय', जिसे रेणुका जी ने मजदूरों के चन्दे से टाटा के खिलाफ लड़कर टाटा की जमीन पर, रातों-रात बनवा दिया था, में उन नेताजी ने बड़ी मदद की थी। इसीलिए खदानें सरकारी होने पर झारखंड कोलियरी में बाबू शिवराम सिंह के मैनेजर सिंह साहब से कहकर रेणुका जी ने उनका नाम भी चढ़वा दिया था। सिंह साहब भी राजपूत ही थे। यूनियन ने लड़कर नेताजी को सी.सी.एल. में नौकरी करवा दी थी। अब वे ठाठ से सरकारी कम्पनी में नौकरी कर रहे थे और यूनियन के नेता भी बन गए थे। यूनियन भी बड़ी तगड़ी थी उनकी! वे मजदूरों की लड़ाइयाँ तो लड़ती ही थी, साथ में गाँव वालों की लड़ाइयाँ भी लड़ती थी। एक-एक बार यूनियन जुलूस लेकर हजारीबाग आती तो शहर का चप्पा-चप्पा ढक जाता। पन्द्रह-बीस हजार से कम लोग नहीं होते। नेताजी तो गाँव के चप्पे-चप्पे से वाकिफ थे। क्या दुन्नी, क्या राहों, पंचमों, लइयो, करमा, रतवे, जरबा, दासोखाप, जगेशर, सभी में नेताजी ने रेणुकाजी की पैठ कराई थी। रेणुकाजी को लेकर वे गाँव-गाँव गए थे। जंगल की लड़ाई भी नेताजी की राय से ही लड़ी गई थी।

रेणुका जी ने क्या गजब नारे दिये थे? ‘लाठा-छावन और जलावन देना होगा’, ‘जोती जमीन बाहर करो’ और सबसे जोरदार नारा तो था ‘घूस नहीं अब घूँसा देंगे’, इसी नारे पर तो सब जंगल के सिपाही जंगल छोड़कर भाग गए थे। मानो आग लग गई थी इलाके में। घरे-घर छावन (घर छानने के लिए लकड़ी), जलावन और लाठा जमा हो गया था। कइयों ने तो ‘गोड़ा धान’ (टाँड़ जमीन में बोया जाने वाला धान, जो कम पानी में भी उपजता है) भी जहाँ-तहाँ ‘टाँड़’ (परती जमीन) में छींट दिया था। नदी-नाले में धान लहलहा गया था। कोई सिपाही ‘रोके’ खातिर जंगल में घुसता ही नहीं था। ठेकेदार का ट्रक भी जंगल में लकड़ी काटने के लिए नहीं जा सकता था। इसका लाभ यह हुआ कि जंगल से लकड़ी की चोरी बन्द हो गई, जो ट्रकों द्वारा सिपाही और रेंजर की मिली-भगत से होती थी।

गाँव के सफेदपोश लोग घाटोटांड कोलियरी में टाटा के यहाँ किरानी बाबू का काम करते थे। उनका घाटो में बराबर आना-जाना लगा रहता था। कुछ लोग केदला में छोटी-मोटी ठेकेदारियाँ भी करते थे। वे शनिवार को अपने-अपने गाँव लौटते और सोमवार को वापिस चल देते थे। यह लोग साँझ को चौपाल में बैठकर अपने गाँव वालों को कोलियरी में हो रहे आन्दोलन से वाकिफ कराते रहते थे। लोग बड़ी श्रद्धा से उन्हें सुनते और नेताजी की मार्फत रेणुकाजी को अपने गाँव में भी लाने के लिए उन बाबुओं की चिरौरी करते थे।

“ई गाँवा में ले आव उनकर (उनको), कुछ हमरा गाँव के सुधार हो जैइते जंगल के सिपहिया का मन बहुत बढ़ गेल है। ऊ भी ठंडा हो जैते।”

लाने का वादा कर, बाबू लोग फिर ड्यूटी पर लौट जाते। वे पुरानी, नई बातों का घाल-मेल कर ग्रामीणों को कुछ-न-कुछ सुनाते रहते और चर्चा में बने रहते। अभिव्यक्ति की ताकत तो आखिर इन्हीं लोगों के पास थी, इसलिए गाँव पर इनकी पकड़ भी मजबूत थी। मजदूर आन्दोलन से जुड़ने के कारण इनमें व्याप्त निम्न जातियों के प्रति तिरस्कार की भावना कम हो रही थी। मजदूर अधिकतर निम्न जातियों के ही होते थे और मुंशी, स्टाफ उच्च जातियों के। सवर्ण नेतृत्व को भी आन्दोलन कामयाब करने के लिए जन-समर्थन इसी निम्न वर्ग से ही पाना जरूरी था। विलासपुर का सतनामी मजदूर, हड़ताल

करके अपनी पूरी कमाई गँवाने में भी कभी पीछे नहीं हटता था, भले वह लड़ाई उच्च जातीय मुंशी व स्टाफ के लिए ही क्यों न हो। ऐसे ही बाबू साहब (राजपूत) किरानी भी, जरूरत पड़ने पर उनका साथ देते थे, भले संस्कारवश वे अपनी शोषण करने की आदत छोड़ नहीं पाये थे। सामूहिक आन्दोलनों में नेता जी नेतृत्व संभालते और सस्पेंड, डिसमिस होने से भी नहीं कतराते थे।

‘नेताजी’ भी बंधौत राजपूत हैं। केदला के सरकारीकरण के बाद अब वे मजदूर के साथ-साथ मजदूर-नेता बन गए हैं, इसलिए सभी जाति के यहाँ जाकर खा लेते हैं। जरूरत पड़ने पर उनकी ‘घरुआ’ (घर की) बोली भी बोलते हैं। आन्दोलन छिड़ने पर वे अपना पूरा वेतन भी लुटा देने का साहस रखते हैं। इसलिए दलित जातियों के मजदूर या गाँव के विस्थापित, किसी अन्य नेता की बजाय इन्हीं की बात पर अधिक विश्वास करते हैं। फिर ये तो स्थानीय भी हैं और रेणुकाजी के विश्वासी भी। तभी न उनकी नौकरी के लिए देवीजी ने भी दिल्ली और कलकत्ता एक कर दिया था।

हजारीबाग जिला में बंधौत राजपूत ही हैं। इनके घर उत्तर बिहार के राजपूत अपनी बेटी का रिश्ता नहीं करते। वे इनकी बेटी जरूर ब्याह कर ले जाते हैं, पर अपनी बेटी इन्हें नहीं देते। दरअसल वे इन्हें असली राजपूत ही नहीं मानते। इस सब के बावजूद, ये राजपूत होने का अहंकार जरूर पालते हैं। इस क्षेत्र में घटवार भी अपने को राजपूत ही कहते हैं हालाँकि कभी वे आदिवासी की श्रेणी में थे। इस क्षेत्र के राजा रामगढ़ का परिवार घटवार ही था। राजा होने के कारण वे अपने को राजपूत कहने लगे। इनके परिवार का रहन-सहन, नाक-नकशा आदिवासी का था पर नेपाल के राजघराने में शादी-ब्याह करने के चलते किसी का रंग गेहुँआ और किसी का गोरा था। ये अपने को सवर्ण मानते थे और बाकी जातियों से खुद को ऊँचा कहते थे। ये लोग एक अहम् पाले हुए थे। इनके पास दूसरों से अधिक जमीनें थीं। घटवार लोग राजा साहब के दरबारी थे, सो वे सामन्ती रंग-ढंग सभी से लैस थे। हुकूमत करना, हुकूम चलाना, लोगों को खटवाना, इन्हें खूब आता था। अभिव्यक्ति के साथ-साथ इनके पास लाठी की ताकत खूब जबर थी और अभिजात होने का अहंकार भी। इनकी कोलियरी में यूनियन फटक नहीं सकती थी।

घाटों की टाटा कम्पनी में भी इंटक छोड़ कर कोई अन्य यूनियन घुस नहीं सकती थी। यह तो 'नेताजी' ने ही वहाँ देवीजी की यूनियन बनवाई थी। टाटा कम्पनी ने इन्हें भले डिसमिस कर दिया था पर इन्होंने भी टाटा को नाकों चने चबवा दिए थे। बंजी के सूड़ी साव और दुन्नी के महतो, सभी इनके साथ थे। दुरू, बरसम, परसा और मुकुन्दबेड़ा के माझी तीर लेकर जुट जाते थे इनके बुलाने पर। हजारीबाग में रेणुकाजी ने जो आदिवासी सम्मेलन किया, उसमें इतने होड़ (आदिवासी मरदों को होड़ कहते हैं) जुटे थे कि राजा साहब भी कभी एक साथ इतने न जुटा पाए होंगे। सब तीर-बीजर से लैस। उसी सम्मेलन में जंगल की लड़ाई का फैसला लिया गया था। गिरीडीह और बोकारो भी तब इसी जिले में थे। जेल जाने के लिए हफ्ते के दिनों के हिसाब से गाँवों को बाँट दिया था। रेणुकाजी के पास एक ही गाड़ी थी। उन दिनों लोग पैदल या मोटरसाइकिल से आना-जाना किया करते थे। उस क्षेत्र में बस चालू नहीं हुई थी। पूरा घाटोटाँड़ का मजदूर, चाहे वह किसी राज्य या जिले का रहने वाला हो, जंगल की इस लड़ाई में उनके साथ खड़ा था। तन-मन-धन, तीनों साथ लेकर जंगल के संघर्ष का बिगुल फूँकने घाटों के मजदूर गाँव-गाँव में फैल गये थे। दो दिन में ही सरकार झुक गई थी और समझौता हो गया था। फैसला हजारीबाग के फारेस्ट विभाग के कार्यालय में हुआ। पटना से हाकिम आए। मांडू में गिरफ्तारी देने के लिए हफ्ते-भर तक लोग आते रहे। उन्हें खबर नहीं पहुँचाई जा सकी थी कि फैसला हो गया है, अब जेल जाने की दरकार नहीं है। सभी को यह बताने के लिए रेणुकाजी और 'नेताजी' को वहीं मांडू में हफ्ता-भर तक रुकना पड़ा था। रेणुका जी ने चन्दे में माँगी गई मकई का आटा दलवा या पिसवा कर, उसकी रोटी व दर्रा खा-खा कर, पूरी लड़ाई लड़ी थी। इस मक्के के चन्दे से लड़ी लड़ाई ने आदिवासियों-मूलवासियों की आठ हजार एकड़ जमीन डिमार्केशन से बाहर निकलवा दी। जिस जंगल में लकड़ी के कूप नहीं बने थे, वहाँ सरकार ने डिपो खोल दिए और सस्ते दामों लाठा उपलब्ध करवाया। छावन-जलावन की छूट मिल गई। वर्षों तक सिपाहियों की कड़ाई बन्द रही। संगठन कमज़ोर होने पर पुनः सख्ती शुरू हो गई।

नौ

फिर छेड़ी गई बंजी में पानी की लड़ाई। इन्हीं 'नेताजी' ने बंजी वालों को जगाया और रेणुकाजी ने जैसे गोमिया में पानी की लड़ाई लड़ी थी, वैसी ही लड़ाई बंजीवालों के लिए भी छेड़ दी थी।

“चलो जी, आप भी निकलो जी पानी तो आप भरकर लाती हो जी, चलो आज बी.डी.ओ. के घेरेंगे जी। टाटा में पानी अफरात बहता है बंजी के लोग पानी बिना मरते हैं। आठ कोस से पानी भर के लाना पड़ता है आखिर तो 'जनी' ही भर के लाती हैं न पानी। बंजी, दुन्नी, परसा, केदला, झरना, मुकुन्दाबेड़ा की जमीन पर घाटों कम्पनी इतना कमा रही है, तो वह हमें पानी क्यों नहीं देगी? यहाँ घर की औरतें पानी की लड़ाई के लिए नहीं निकलेंगी, तो कैसे सरकार जानेगी कि आपको पानी की दरकार है? अरे, रानी साहिबा वोट खातर महल छोड़कर निकल आती हैं, तो अब जब रेणुकाजी आपको पानी खातर बुला रही हैं तो काहे ले चुपचाप खड़ी हो? चलिए आप लोग भी चलिए। बिना रोये माय भी दूध न पिआए है...।” कहकर भगवान बाबू ललकारते थे।

उनकी ललकार पर सभी औरतें घरों से निकल आई थीं। उनके प्राणों की रक्षा वे अपनी जान से बढ़कर करते थे। बाईस किलोमीटर चलकर जुलूस मांडू पहुँचा था। जुलूस में पाँव-पैदल, साइकिल-सवार, बैलगाड़ी-सवार सभी के सभी, साथ-साथ चल रहे थे। दो दिन बिना अन्न-जल छुए रेणुकाजी ब्लॉक ऑफिस में आमरण अनशन पर बैठी रही थीं। बंजी वाली किसी भी औरत ने

पानी तक नहीं हुआ था। बंजी के कई बच्चे भी हठ ठानकर अनशन पर बैठ गए थे। भैरो सावजी मुखिया भी डटे थे। कोई टस से मस नहीं हो रहा था। भगवान बाबू घूम-घूम के अगल-बगल की बस्तियों से भी लोगों को जुटा लिए थे। सरकार को तीसरे दिन समझौता करना पड़ा। पानी के टैंकर के साथ टाटा का ट्रक मँगाया गया। जब तक टाटा कम्पनी या सरकार चापाकल नहीं लगाएगी, तब तक वही टैंकर पानी लादकर दोनों टाइम बंजी वालों को देगा। खुशी की लहर फैल गई थी गाँव-भर में।

अगल-बगल के गाँव भी अब लड़कर पानी लेने की बात सोचने लगे थे। 'पानी की रानी जिन्दाबाद' का नारा 'नेताजी' उछल-उछलकर लगा रहे थे। लम्बे-चौड़े तो थे ही। जवान भी थे। खूब जस फैला रेणुकाजी और 'नेताजी' का। अब कई नये नेता उनकी कतार में जुड़ रहे थे। कई नए लड़के नेतृत्व लेने को तैयार हो रहे थे। लोग नए-नए मुद्दे खोज रहे थे। छोटन, गोपाल, बीगन, द्वारिका साव बंजी से उभरे। भैरो साव मुखिया आगे आए। घाटो से इंटक के नेताओं को छोड़कर निजाम बाबू के नेतृत्व में एक पूरी टीम नेता जी के साथ निकली। घाटो में भी टाटा की कोलियरी में यूनियन बन गई। नेताजी ने केदला में भी यूनियन बनाने की राय दी। राजा साहब की कोलियरियों पर रसीवर बैठ गया था। ठेकेदार अब रायल्टी का पैसा बिहार सरकार के अधिकारी, जो रसीवर बने थे, को देने लगे थे। राजा साहब के सब अधिकार खत्म कर दिए गए थे। 'नेताजी' पहले राजा साब के साथ ही थे पर रेणुकाजी से वे इतना प्रभावित हुए कि सब पुराने सरोकार छोड़कर राजा साहब के सब भेद और गुरों के साथ रेणुकाजी की मदद में लग गए। नेता जी के गाँव के संस्कार राजा का साथ देते, पर उनका मजदूर-जनित संस्कार, जो अब उन पर हावी हो गया था अब उन्हें मजदूरों के हक की लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित करता। अब वे प्रतिबद्ध होकर सामने आ गए थे। घाटो का मजदूर पहले भी एक इंटक विरोधी यूनियन के नेतृत्व में अपनी लड़ाई लड़कर हार चुका था। उस लड़ाई का नेता टी.बी. की बीमारी से ग्रसित होकर मरा था। उस नेता का नाम मजदूर बड़े आदर, श्रद्धा और प्यार से रेणुकाजी के सामने लेते थे। प्रायः

मजदूर यह कहते थे कि उन्हीं की तरह रेणुकाजी ने भी घाटों को फिर से जिन्दा कर दिया है। भगवान बाबू उस नेता को याद कर रो दिया करते थे। उन्हे रेणुकाजी में वही जोश, वही खरोश, वही चुनौती-भरा लहजा, वही संकल्प नज़र आता था जो उनके अभिजात संस्कारों को भी सहलाता था और उन्हें नए डीक्लासड वर्ग में खुद को ढालने में मददगार होता था। आखिर कुर्बानी ही तो कर रहे थे वे। कुर्बानी का यह भाव, उन्हें विभोर कर देता था। यूँ तो कुर्बानी और कर्तव्य शब्द सदैव सामन्ती परिवेश से जुड़े रहे हैं, पर इसी के माध्यम से उनकी सामन्ती प्रवृत्ति 'यश' की प्राप्ति कर के, अपने अहम् की तुष्टी करती थी। मजदूर-किसान संगठन बनने के बाद ये प्रवृत्ति अब आम आदमी, मेहनतकश मजदूर व किसान के हिस्से का हथियार भी बन गई थी। मध्ययुगीन इतिहास में झॉकें तो पता चलता है कि युद्धों में पराजित कई उच्च जातियाँ अपनी आर्थिक स्थितियों के कारण भी निम्न वर्ग में शामिल होती रही हैं। फलतः यह डि-क्लासड वर्ग सामन्ती रुझान रखते हुए भी जो भारत के निम्नतर वर्ग में भी मौजूद है अपनी जमातों व समाज के लिए, कुर्बानी व त्याग का निर्वहन करने लगे। निम्न वर्ग द्वारा अनेक कुर्बानियाँ दी गईं, जो पहले उच्च वर्ग को स्वीकार्य नहीं थीं, अब वे स्वीकारी जाने लगी हैं। 'नेताजी' उसी श्रेणी में आते थे।

ऐसे इस क्षेत्र के मजदूर कोलियरियों में इंटक के साथ थे। राजा साहब की कोई यूनियन नहीं थी। राजा साहब व्यापार की राजनीति करते थे मजदूरों की या गरीब जनता की नहीं। वोट की बिसात के लिए गरीब जनता उनकी मोहरा थी। उनकी भलाई उनका लक्ष्य नहीं था। इसलिए जब मांडू में पानी के लिए बंजी वाले संघर्ष के दौरान पहुँचे, तो मांडू वालों को इसका अहसास हुआ। राजा साहब चुनाव की मीटिंगों में भाषण देने बाजार-हाट (वे हाटों में ही मीटिंग करते थे) में आते, तो असले-अमले के पीने की पानी की जरूरत पूरी करने के लिए, पद्मा से पानी का एक टैंकर भरकर अपने साथ लाते थे। चुनाव में भी नेताजी रेणुकाजी के साथ थे। उन्होंने मांडू की चुनाव सभा में मांडू वालों से पूछ ही लिया था

“काहे नहीं माण्डू में आज तक कोई चापाकल, कोई कुआँ कुड़वाया राजा साहब ने चुनाव जीतने के बाद भी? यह तो राजा साहब की अपनी सीट थी न। अपने लिए तो वे पद्मा से पानी ले आते हैं। क्या मांडू की जनता के हर रोज पद्मा के महल से पानी लाकर पिलाएँगे वे?”

सवाल ने ठिकाने पर वार किया था। मांडू से राजा साहब को उनके निश्चित वोट भी नहीं मिले। घाटों में तो मात्र इक्कीस वोट मिले थे उन्हें। रेणुकाजी को इक्कीस सौ मिले थे।

तो उन्हीं ‘नेताजी’ के लिए प्रस्ताव आया था मौसी के लिए। पत्नी मर गई है। तीन-तीन बेटियाँ हैं। सबका ब्याह हो गया है। सभी अपने-अपने घर हैं। बेटा कोई है नहीं। भतीजे हैं। क्वार्टर में रहते हैं ‘नेताजी’। बिजली-पानी सब की सुविधा है। बस? एक औरत नहीं है घर में। औरत जो खाना बनाती रात को या रात को ड्यूटी के बाद भोर को थककर घर आने पर हाथ-गोड़ चापती (दबाती), तेल मालिश करती। मालिश करते-करते ‘नेताजी’ की मर्दानगी जग जाती तो, उस भूख को भी शान्त करती।

अब पुरानी बात तो रही नहीं। पुराने आन्दोलन भी नहीं हैं। ‘नेताजी’ यूनियन के आह्वान पर घेराव करने हजारों की भीड़ लेकर जाते थे। लोग मधु-मक्खियों के छत्ते की तरह जुटे रहते थे उनके गिर्द, जैसे कि वह स्वयं मधुमक्खियों का छत्ता हों। अब तो भिड़ के छत्ते की तरह बिखर गए हैं सब। मधु तो है नहीं कि जुट जाएँ। सब जहाँ-तहाँ भिनभिनाते हैं, अपने-अपने स्वार्थ में। ढेर नेता हो गए हैं और सभी अपनी-अपनी मिठाई की दुकान खोल लिए हैं। सभी के यहाँ मँडराते हैं वह बरें। सब नौकरी पा गए हैं। अब तो बस दूसरे की तरक्की मारकर, अपनी तरक्की करवाने के लिए रोज़ यूनियन बदलते रहते हैं। जिन्दगी की लड़ाई तो ‘नेताजी’ की मदद से रेणुकाजी ने लड़ ही दी थी। अब तो दुकानदारी है। अब भला अनपढ़ ‘नेताजी’, सिक-लीव, घर-छुट्टी, ग्रुप-ग्रेड ग्रैच्यूटी सी.एम.पी.एफ., कैसे पहचानें? रेणुकाजी भी विधायक बन गई हैं। अब वे कोलियरी कम आती हैं। अब ‘नेताजी’ के गिर्द भीड़ नहीं जुटती। बस कुछ लोग ज़रूर, जो उन्हीं के क्वार्टर

में हैं, उनके यूनिवन ऑफिस में जुट जाते हैं।

कहीं पी.ओ. से झगड़ा कहीं मैनेजर से, तो कभी दूसरी यूनिवन वालों से बहसा-बहसी यही उनकी दिनचर्या है। अब तो बस घर में उनका गुस्सा सहने के लिए एक अदद घरवाली यानी एक औरत चाहिए, जो उनका निहोरा भी सहे उनकी मार भी और वह उनसे वारिस भी नहीं माँगे। जायदाद में हिस्सा माँगने वाली औरत की भी उन्हें दरकार नहीं। जायदाद तो भतीजों की रहेगी। हाँ, खाना-पीना पूरा-पूरा मिलेगा। कपड़ों की भी कमी न रहेगी। वह उनके साथ बैठकर पियेगी भी। अंग्रेजी दारू भी गाहे-बगाहे मिलेगी। वे मोहना का भी भार उठाएँगे। पढ़ाएँगे भी उसे। सारा घर इसी के जिम्मे रहेगा। रसोई, खाना-पीना सब कुछ। वे अपना पूरा का पूरा वेतन उसी को सौंप देंगे। वही चलाए घर-बार। मगर जब बेटी-दामाद घर आएँगे तो रसोई से बाहर आना होगा उसे। तब रसोई भाई-भतीजा या बेटी-दामाद को सौंपनी होगी। वह इसके हाथ का पका खाना न खाएँगे। 'नेताजी' तो सभी जगह खाते हैं। उन्हें परहेज नहीं है पर कुटुम्ब का लिहाज करना तो जरूरी है न। हाँ, उसे सोने का कमरा खाली नहीं करना होगा। सोने में भला कैसा परहेज?

मौसी सोच में पड़ गई। नेताजी उमर में मौसी से ड्यूढ़े हैं पर हैं तन्दुरुस्त। गाँव के दामाद ने बताया था कि अभी भी चार-छह औरत रख सकते हैं नेताजी! इस क्षेत्र में मरद की मर्दानगी का मापदंड औरतों को रखने की संख्या एवं क्षमता होता है। ऐसे औरत मरने के एक साल बाद नेताजी एक चौदह बरस की लड़की को लिवा लाए थे। कोलियरी में सबने उनका मज़ाक उड़ाया “क्या बुढ़ारी में बेटी जैसी महरारू ले आए?” सबसे बड़ी समस्या नेताजी के लिए यह हो गई थी कि कड़ियों ने उस लड़की पर डोरे भी डालने शुरू कर दिए थे। जो घर में आता उनसे ऊटपटाँग सवाल पूछता।

“क्या बेटी आई है आपकी?”

एक दिन तो हद ही हो गई। रेणुकाजी आई हुई थीं। उस बच्ची को देखकर उन्होंने पूछ ही लिया

“क्या नतनी है यह आपकी? किस बेटी की बेटी है?”

अब क्या कहें नेताजी! काटो तो खून नहीं। टाल गए जवाब।

दूसरी तरफ अगल-बगल के संगी-साथी मजदूरों के लड़के ताक-झाँक तो करते ही थे, खुद उनके घर के भतीजे, दामाद भी उसके पास आकर बैठने लगे थे। 'नेताजी' को हमेशा ड्यूटी पर भी चिन्ता लगी रहती थी, कि कहीं 'रबिया' (उनका भतीजा) घर में न जा घुसा हो? कहीं उनका दामाद बजरंगिया न पहुँच गया हो घर में? सब घुर-घुर आते है घर में। रात को जाने का नाम ही नहीं लेते। देर तक गप्प हाँकते हैं। आजकल तो वे सब भी 'नेताजी' की मुट्ठी-चापी कर देते हैं! इसी सोच में पड़े रहते थे 'नेताजी'। एक दिन बड़का दामाद आया। वह भी नइकी माई (माँ) के पीछे-पीछे घूमने लगा। नेताजी कई दिन तक परेशान-परेशान रहे।

एक दिन वह लड़की ही घर से भाग गई।

कहा तो गया कि वही छोड़ आए हैं। जग-हँसाई के डर से यह नहीं बताया गया था कि दरअसल उनकी वह 'नइकी महारारू', उनके ही भगिना के साथ भाग गई थी।

तब से उन्होंने फैसला कर लिया था कि अध-वयस औरत ही लाएँगे और लाएँगे तो कोई माझी या मुंडा ही। वे ज्यादा वफादार होती हैं। वे लोग या तो आएँगी ही नहीं, आ गई तो सेवा खूब करती हैं। साफ-सुथरी अपने भी रहती हैं, घर-बार भी साफ रखती हैं। जो गछवाना हो पहले गछवा लेती हैं बाद में लूट-लाट के मायके का घर नहीं भरतीं। ज्यादा इधर-उधर भी नज़र नहीं दौड़ातीं।

दस

नेताजी के पास मौसी की चर्चा, सिमरिया के रहने वाले मजदूर हरिया ने चलाई थी। हरिया की बहन मौसी के गाँव में ब्याही थी। हरिया बहन को लाने गया था तो मौसी से मुलाकात हुई थी। उसे वह बड़ी अच्छी लगी थी। मौसी ने उसे अपने हाथ की बनी हँड़िया भी पिलाई थी। पूरी जवान उम्र 'तीसेक' बरस

देह-काठी कड़ी व सुघड़, काली पर चमकती चमड़ी। चपटी नाक पर दूर तक सूँघ लेने को सक्षम, आदमी और जानवर दोनों की गंध पहचानने वाली। जमीन की गंध से वाकिफ, पैसों की गिनती-सीखी हुई, जोड़-घटाओ में भी माहिर। इतनी 'उमिर' तक अपना बच्चा नहीं हुआ था। अब क्या होगा? सो जिसके घर जाएगी उसे वारिस का खतरा नहीं होगा। ऐसे भी छोटानागपुर में रखनियों की औलाद को लोग वारिस नहीं मानते।

“पर आज के 'जुग' में सब होने लगा है। क्या पता कोर्ट में दावा ठोक दे बाद में कोई? इसलिए पहले ही 'नक्की' करना ठीक होता है।” 'नेताजी' ने हरिया की मार्फत कहलाया था।

मोहना को तो 'नेताजी' खुशी-खुशी पढ़ा देंगे। दूसरों का काम तो 'नेताजी' जिन्दगी-भर करते ही आए हैं, इसका भी कर देंगे। ऐसे भी आदिवासी औरतें दूसरा मरद करते वक्त, पहले मरद की औलाद को साथ ले जाती हैं। उसे दूसरा मरद ही पोसता है। बड़ा होने पर वह अपने असली बाप की जायदाद लेने लौट आता है।

“कोलियरी में तो अब बेटे, दामाद, पत्नी, विधवा बहू या विधवा बेटी को 'नाइन फोर थ्री' (9.4.3) में (कोयला खदानों में हुए राष्ट्रीय समझौते की धारा 9.4.3 के तहत आश्रित को नौकरी देने का निर्णय) नौकरी भी मिल रहल है।” हरिया ने मौसी को बताया था।

सो मौसी ने पूछवाया “रिटायर होने से पहले नौकरी हमर के देय के तैयार हैं 'नेताजी', तो हमर के उनकर संग रहेके मंजूर है।”

'नेताजी' ने तुरन्त जवाब भेजा “तैयार हैं।”

मौसी को अन्देशा था कि सात-आठ बरिस बाद जब नेताजी रिटायर हो जाएँगे, तो अपने गाँव चलने को कहेंगे। तब सवाल उठेगा, “मौसी कहाँ रहे?” राजपूत गाँव में उसे कोई मालकिन बनकर घर में रहने न देगा। रखनियाँ तो सब बाबू साहब लोग रखते हैं पर दिन में उनका दर्जा नौकर का-सा ही रहता है, भले रात को पत्नी से ज्यादा चिरौरी करते हों उनकी। औरतें मरद के घर रखनी बनकर बैठती हैं, पत्नी बनकर 'आती' हैं रहती हैं।

पत्नियाँ छोड़ दी जाती हैं या मरकर निकलती हैं। रखनियाँ जिन्दा रहते हुए 'उठा दी' जाती हैं। वह कहीं और जाकर 'बैठ' सकती हैं। वह प्रायः निम्न वर्णों की ही होती हैं। इधर सवर्ण वर्णों की औरत रखनी नहीं होती। फिर यहाँ किसी भी औरत का दूसरा ब्याह भी नहीं होता। दूल्हा बस बारात लेकर पहली बार ही आता है। फिर तो वह मर्दों की मर्जी पर 'बैठती' और 'उठती' रहती है। कभी अपनी मजबूरी या कमजोरी के कारण भी 'बैठ' या 'उठ' जाती है। कभी-कभी किसी और से मन मिल गया, तो वह स्वतन्त्र है 'दण्ड भर के' दूसरे के यहाँ 'बैठ' जाने को। इस 'बैठने' या 'उठने' पर ईर्ष्यावश द्वन्द्व भी होते हैं।

पता नहीं 'बैठ जाना' मुहावरा इनके लिए किस भाषाविद् ने गढ़ा था। वह जरूर कोई पुरुष ही होगा। अजीब-सी बात है, वेश्या के यहाँ औरत पर पुरुष 'बैठता' है, जैसे भँवरा फूल पर। पर रखनियों का बैठना किस पर? कहाँ? हाँ, वे मध्यम वर्ग के यहाँ चोरी-छिपे, किसी 'बड़के' या 'नीच' कहलाने वाली जाति के मर्द के यहाँ खुल्लमखुल्ला 'बैठती' हैं। बड़े वर्ग में उनके घर ही के सामने बने पुराने झोपड़े में अथवा रूआब-दुआब के साथ दूरदराज किसी का बना-बनाया घर लेकर या 'दाब' कर भी वे 'बैठाई' जाती हैं। निम्न वर्ग में तो उनके घर के अन्दर कभी-कभी 'पहलकी' औरत के साथ ही 'बैठ' जाती हैं वे। बड़े और निम्न वर्ग में ऐसे मामलों में केवल शानोशौकत के सिवा बहुत कुछ समान होता है। बड़े और छोटे लोग चोरी नहीं करते। बड़ों को समाज की परवाह ही नहीं होती या कहेँ समाज उनके सौ खून भी क्षम्य मानता है और तथाकथित नीच के यहाँ उच्चवर्गीय वर्जनाएं ही लागू नहीं हैं। इसलिए वे जो करते हैं खुल्लमखुल्ला करते हैं। मध्यम वर्ग ही चोरी में माहिर है। बड़े लोग पत्नी और रखनियों में दूरी बनाए रखता है। वे उन्हें अलग-अलग स्थान पर ही रखते हैं। पर पत्नी दूसरी औरत के बारे में सब जानकर भी अनजान बनी रहती है। मध्य और निम्न वर्ग गरीबी के चलते पत्नियों के साथ ही रखनियाँ भी रख लेता है। इन मर्दों के घर में, संपत्ति की तरह एक और सामान की वृद्धि या एक बीघा जमीन की वृद्धि की तरह एक अदद औरत भी बढ़ जाती है।

मोहना को लेकर मौसी नेताजी के यहाँ क्वार्टर में आ 'बैठी'। मौसी बहुत अच्छा मिर्च-मसाले वाला खाना बनाती थी। पहली बार जब नेताजी मौसी को लाए तो साथ में उसके भाई-भाभी और बहन की बेटी बिन्दु भी आई थी। बिन्दु उसे मौसी बुलाती थी, तो कोलियरी में भी पूरी कॉलोनी वाले उसे मौसी बुलाने लगे। बिन्दु की माँ के मरने पर, उसके बाप ने दूसरा ब्याह कर लिया था। 'नइकी' के 'पहलके' की औलाद में, एक बेटा था। उसने उसका जिम्मा भी 'गछ' लिया था। बिन्दु का ब्याह जिससे किया था, वह किसी दूसरी से 'फँसल' (फँसा हुआ) था, इसलिए वह बिन्दु का गौना ही कराके नहीं ले गया। बिन्दु ब्याही तो गई थी पर कुँवारी ही रह गई थी। गैर-आदिवासी मध्यम वर्ग में सौतेली माँ की परम्परा है, तो आदिवासियों में सौतेले बाप का चलन है। बड़े होने तक पहले की औलाद माँ के साथ, दूसरे बाप द्वारा पाली जाती है। सौतेली माँ की तरह आमतौर से सौतेले बाप जालिम नहीं होते। वे अधिक उदार और सहिष्णु होते हैं।

'नेताजी' ने तो बिन्दु के लिए भी राजपूत वर खोजना शुरू कर दिया था। इसमें भी दो-एक हजार रुपया उनको दलाली में मिल ही जाता। (आदिवासी लड़कियाँ खरीदी जाती हैं।) पर बिन्दु नहीं मानी। मोहना को स्कूल में भर्ती करवा दिया गया। स्कूल की पूरी यूनिफार्म और नए जूते ले दिए गए। मौसी को नेताजी 'ऐजी' कहकर बुलाते थे। बहुत आदर देते थे। ज्यों-ज्यों नेता जी के रिटायर होने की तिथि नज़दीक आ रही थी, मौसी बेचैन होती जा रही थी। उसने अपनी जवानी के दिन गला दिए थे उस बूढ़े मौलवी की सेवा में या शहजादे को पालने तथा सलीम के इन्तजार में। ऐसे तो बड़ा परहेज़ी था मौलवी पर उसे औरत से परहेज़ न था। बेटी के बराबर औरत मिल गई थी न। जरूर कोई सबाब का काम किया था उसने कि उसे उस जैसी औरत मिल गई। जन्नत की हूर भी उसे इतना सुख और तवज्जो न दे पाती, जितनी मौसी ने दी। मौसी सोचकर कटुता से भर जाती। उसे घर-वापसी की पुरानी यादें कचोट जातीं।

घर में लौटी तो बिरादरी में बात उठ गई। जब उसका पैसा आता था,

तो सभी मिलकर खाते थे। तब वह न तो अपराधी थी, न ही पापी। जब मौसी मौलवी के यहाँ से वापिस घर लौटी तो नैतिकता-अनैतिकता के सब मूल्य एक-एक कर खड़े हो गये! मौसी के मौलवी के घर बसने की खबर सुनकर पापों की तो कतार ही लग गई थी। भाई-भाभी ने उसका भोज-भात कर दिया था। भोज-भात यानी उनकी तरफ से वह मर गई थी। पर जब वह सामान-पत्तर लेकर घर मिलने आती तो भोज-भात बिसर जाता। मौसी पुनः जिन्दा हो उठती। शायद मौलवी के घर से लाये उपहार पैसा कपड़े-लत्ते मुर्दार में प्राण फूंक देते थे। पूरा परिवार मौसी के साथ बैठ कर उपहारों का उपभोग करता था। हालाँकि रस्मों-रिवाज़ के तहत वह मरी हुई ही रहती। जब वह मौलवी के मरने के बाद पुनः घर लौटी तो उसे जिन्दा होने के लिये फिर भोज कराना पड़ा था। बिरादरी में मिलने या मिलाने के लिए भोज-भात की रस्म जरूरी होती है, तभी सामाजिक बहिष्कार समाप्त माना जाता है। भोज-भात यानी खाना-पीना मनुष्य को जिन्दा भी करता है और मारता भी है। कितना सच भी है यह बिरादरी में! मनुष्य से अधिक महत्व है भोजन का। 'मरल (मरी हुई) मौसी भोज के बाद फिर जिन्दा मान ली जाती। बिरादरी के धर्मराज के सामने जाने कितनी बार जीते-जी, मरती और जीती हैं ये आदिवासी लड़कियाँ!

अब जब वह भगवान बाबू के यहाँ आई तो फिर भोज-भात हुआ। भाई-भाभी ने घोषणा की कि वह उनकी तरफ से मर गई, भले वे खुद ही उसे 'नेताजी' के यहाँ आकर बैठा गए थे। उन्होंने उनसे पैसा भी लिया था; पर बिरादरी तो बिरादरी होती है न! बिरादरी के धर्मराज का काँटा तो बोलेगा ही। उसे चुप कराना लाज़िमी होता है। कैसी विडम्बना है यह? इसे चुप कराने के लिए भोज का पासंग ही काफी होता है ऐसे भी भोजन एक पासंग का काम करता है बिरादरी और व्यक्ति के बीच। ऐसे भी जीने के लिए भी तो भोजन जरूरी होता है। है न? ऐसे मौसी का मन तो मर्दों से ही ऊब गया था। मौसी को लगता था कि उसका कोई नहीं है। बस एक मोहना है, जिसे इसने पैदा होते ही भाभी से अँचरा में ले लिया था। दूध नहीं था उसकी छातियों में पर ममता के घूँट जरूर थे, उसकी 'चूचियों में।' मोहना बड़ा हो रहा था। उसके

साथ-साथ मौसी की इच्छाएँ भी बड़ी होती रहीं।

यहाँ आकर भी मौसी कभी-कभी अपने अतीत में चली जाती या भविष्य की गाँठें खोलती।

“का होते? नेताजी नौकरी देते कि नाय? कहीं ठग तो नहीं रहल हय? सभी मरद एक जैसन होत हय। एके जात हैं सभे हिन्दू होवे कि मुसलमान। कोई फरक नाय है। बस सभे के एक अदद औरत चाही। बेटी बरोबर हो या माय बरोबर, का फरक पड़त है उनकर? काम करे और औरत बनकर रहे बस मरद की बरोबरी न करे। आपन हक नाय माँगे। आपन फैसला खुद अपने नाय करे।”

रेणुकाजी जब भी कोलियरी में आतीं, मौसी उनसे कहती “हमर नौकरी करवाय दे दीदी, रिटैर होवे के बाद भाई-भतीजा छीन के ले जैते सब पैसा-कौड़ी। हम फिर रोड पर आ जायब।”

रेणुकाजी ने बहुत कोशिश भी की थी, पर मौसी की नौकरी के खिलाफ़ पूरा का पूरा जातितन्त्र खड़ा हो गया था। पुरुष समाज का तन्त्र भी उसकी नौकरी के पक्ष में न था। दो-दो तन्त्रों से जूझ रही थी मौसी! रेणुकाजी को भी मात खानी पड़ी थी उन तन्त्रों से। पहले तो नेताजी ने ही मूर्खतावश या जान-बूझकर अपनी सेवा पुस्तिका में नाम तो मौसी का नामिनी में लिख दिया, पर उसकी उमर लिखा दी 35 वर्ष। कोलियरी के नियमानुसार 35 वर्ष से ज्यादा आयु वाले या वाली को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की श्रेणी के नियमों के अन्तर्गत नौकरी नहीं मिल सकती। इसलिए ‘नेताजी’ के रिटायर का फार्म भरने के समय तक मौसी की उमर 39 वर्ष हो गई थी। ‘नेताजी’ अनफिट भी हो जाते तो भी आयु के चलते मौसी योग्यता में खरी नहीं उतरती। उस फार्म को ठीक करवाने में काफी समय लगा रेणुकाजी को। कोलियरी के जितने राजपूत भाई थे, रेणुकाजी की अपनी यूनियन समेत, सबके सब मौसी की नौकरी के विरोधी थे। कोई दामाद को, तो कोई भतीजे को नौकरी देने के पक्षधर थे। मौसी की नौकरी का कागज वे लोग, केदला परियोजना के कार्यालय से बढ़ने ही नहीं देते थे। बहुत जद्दोजहद के बाद

कागज जेनरल मैनेजर के कार्यालय चरही पहुँचा।

इसी बीच रेणुकाजी को पार्टी के काम से बाहर जाना पड़ गया। लौटने पर पता चला कि भगवान बाबू ने गोल्डन शेक-हैंड की योजना के तहत नौकरी से इस्तीफा देकर अपनी ग्रैच्युटी की जमा राशि का चेक मँगवा लिया है और दो दिन बाद वे पैसा उठा लेंगे। रेणुकाजी ने उन्हें बहुत डाँटा-फटकारा। अब नौकरी तो वापस मिल नहीं सकती थी। ग्रैच्युटी का भुगतान कराने में प्रायः दो-तीन महीना लग जाता है। उनके पीछे से परियोजना से लेकर जी. एम. ऑफिस चरही के सभी बाबुओं, किरानियों ने मिलकर 15 दिन में ग्रैच्युटी का चैक भी तैयार करवा दिया। उनकी गोल्डन शेक-हैंड की अरजी तो सभी राजपूत किरानियों ने मिल कर हाथों-हाथ जाकर मंजूर करवा ली। दो सप्ताह का काम एक दिन में हो गया। भगवान बाबू रेणुकाजी के सामने पड़ने से कतराने लगे। यूनियन के नेतागण भी कभी इस पर, तो कभी उस पर जिम्मेदारी टालने लगे और अपनी अनभिज्ञता जताने लगे।

दरअसल भगवान बाबू उस क्षेत्र में यूनियन के एक जन-नेता थे। वे थे तो अनपढ़ पर उनकी बोली की टंकार सुनकर मजदूरों का, खासकर ग्रामीणों का हौसला बुलन्द हो जाता था। वे मरने-मारने पर उतारू हो जाते थे। बाकी नेता खाली कानून 'बतियाते' थे। पार्टी से आए नेता पार्टी की लाइन की बात करते थे पर मजदूरों के झोंपड़े में जाने से कतराते थे। मार-पीट की बात हो तो भगवान सिंह की तरह भिड़ नहीं जाते थे।

“चलो जी, हम रहेंगे आगे! हम खाएँगे गोली!” कह कर भगवान बाबू आगे हो लेते थे।

दूसरे लोग कन्नी काटकर निकल जाते या खड़े-खड़े तमाशा देखते, नहीं तो बहाना बनाकर हट जाते थे। ज्यादातर नेतागण दो तरफ़ी बात करके, दोनों पक्षों को खुश करने की नीति अपनाते थे। एक पक्ष का समर्थन करना वे बेवकूफी समझते थे चूँकि उससे उन्हें दूसरे पक्ष की दुश्मनी मोल लेनी पड़ती थी। ये दुश्मनी व्यक्तिगत तौर पर भी हो सकती थी।

यूनियन में हर रोज समीकरण बदलते रहते हैं। आज का दुश्मन कल

का दोस्त, कल का दोस्त आज का दुश्मन भी बन सकता है चूँकि उनके स्वार्थ, जिनकी टकराहट हर रोज होती रहती है हरदिन बदलते रहते हैं। जो बहुमत के स्वार्थ को, एकसाथ जुटाकर मुद्दा बना ले, वही जन-नेता हो सकता है। जो व्यक्तियों के सवाल में उलझ जाए, वह धन्धा करने वाला व्यापारी नेता हो जाता है। कभी-कभी व्यक्ति भी समूह का हित बना दते हैं। इसमें 'नेताजी' माहिर थे पर बाकी लोग नहीं। ऐसे कामों में साहस, खतरा मोल लेने की क्षमता, आत्मविश्वास चाहिए, जो 'नेताजी' में था, तभी तो इतने बड़े विस्थापितों के आन्दोलन और ठेकेदारों की लड़ाई के समय 'नेताजी' हरमद जोखिम उठाकर रेणुकाजी के साथ रहे।

“ये आज के नेता तब दिखते न थे। कोलियरी सरकारी होने के बाद तो अब पत्थर उठाओ तो एक नेता मिल जाएगा। ढेर नेता पैदा हो गए हैं रेणुकाजी। सब दूध पिए वाले मजदूर हैं मगर खून देने वाला कोऊ न है” नेताजी कभी-कभी गुस्सा होकर बोलते।

बाकी सभी यूनियन की फौज ने मिलकर भगवान बाबू को रास्ते से हटा ही दिया। एक पंथ दो काज। जस भी ले लिया कि 'नेताजी' का काम 15 दिनों में करवा दिया पैसा मँगवा दिया और मौसी को नौकरी भी नहीं मिलने दी और कोलियरी में रेणुकाजी की यूनियन का एक स्तंभ भी गिरा दिया। 'नेताजी' गोल्डन शेक हैंड ले कर रिटायर न होते तो वे कोलियरी में यूनियन का नेतृत्व करते रहते। तब दूसरी पाली के नेतागण 'नेताजी' का स्थान कैसे लेते? अच्छी तरह सब सोच-समझ कर ही रेणुकाजी की यूनियन के छुटभैया नेताओं ने 'नेताजी' को रास्ते से हटा कर, बागडोर अपने हाथ में सँभाल ली।

“रेणुकाजी की यूनियन में इस ब्रांच में बाकी सब तो लुंज-पुंज नेता हैं। चुटकी मारो तो भागने वाले, धाकड़ तो 'नेताजी' ही थे, सी चले गए। अब कैसे रहेंगे 'नेताजी' कोलियरी में? क्वार्टर भी तो छिन ही जाएगा...?” दूसरी यूनियन वाले टिटकारी भरते। रेणुकाजी की यूनियन के जूनियर कैडर 'मने-मन' खुश थे कि भगवान बाबू फील्ड छोड़कर चले जाएँगे तो वे उनका स्थान ले लेंगे।

“इन्हीं के घर देवीजी टिकती हैं, इन पर ज्यादा भरोसा करती हैं, जो चन्दा होता है भगवान बाबू जाकर उन्हें पूरी रिपोर्ट कर देते हैं। हम लोग कुछ माँग भी नहीं पाते।” वे कहते।

रेणुकाजी भगवान बाबू के घर आई तो मौसी खूब रोई। अब वह क्या करे? भगवान बाबू का बड़ा भाई सब सामान ढोकर गाँव भिजवाने के लिए घाटों से आकर उनके यहाँ जम कर बैठे गया था। रेणुकाजी ने कहा भी “दोनों इसी क्वार्टर में रहें, यूनियन चलाएँ, भगवान बाबू होल टाइमर हो जाएँ, मौसी मुर्गी फार्म खोल ले, गाय है तो दूध भी होगा ही। अच्छी बिक्री हो जाएगी सिलाई सीख ले तो सी.सी. एल. की ट्रेनिंग योजना में कहीं काम मिल जाएगा।” पर भगवान बाबू का भाई एक दिन रातों-रात ट्रक लेकर आया और गाय, मुर्गी, समेत सब सामान लादकर गाँव ले गया।

भगवान बाबू को मौसी मना करती रही “गाय रहने दो, मैंने पाली है, बाछी से बड़ी किया है मैंने इसे।”

भगवान बाबू का मन हुआ कि गाय छोड़ दें पर उनका भाई क्यों मानने लगा? सो सब सामान चला गया। मोहना आकर रेणुकाजी को हजारीबाग सब खबर दे गया।

तीन दिन बाद भगवान बाबू लौटे। यूनियन के नेतागणों ने भगवान बाबू को होल टाइमर रखने से इंकार कर दिया।

“कौन देगा उनके रहने खाने का खर्चा?”

दरअसल सवाल यही था। चन्दा माँग कर खाने की आस लगाए बैठे कैडर की दूसरी पंक्ति ने भगवान बाबू को ‘होलटाइमर’ का वेतन देना नहीं स्वीकारा।

“कौन देगा इन्हें इतना वेतन? यह तो पढ़े-लिखे भी नहीं हैं कि अरजी लिख दें। खाली हल्ला करना जानते हैं। मैनेजमेंट को गाली ही देने से क्या यूनियन चलेगी? अब ठेकेदारी नहीं है। कानून से भी बात करना उन्हें आना चाहिए।” लक्ष्मी सिंह ने सवाल उठाया। लक्ष्मी सिंह सफेदपोश नेता था। जल्दी ही आफिसर बनने वाला था। प्रबन्धन की नज़रों में अच्छा बना रह कर

प्रमोशन जल्दी मिल सकती थी, इसलिए सदैव संघर्ष को टालता रहता था। भगवान बाबू के बिल्कुल विपरीत था वह। हालांकि वह भी राजपूत था पर अपनी प्रमोशन का स्वार्थ जाति का लिहाज़ नहीं करता था।

मौसी को गाँव ले जाने का प्रस्ताव भगवान बाबू ने पुनः रखा। मौसी नहीं मानी। रेणुका जी द्वारा हस्तक्षेप करने पर उन्होंने हजारीबाग की यूनाइटेड बैंक में 15 हजार रुपया मौसी के नाम से जमा करा दिया। सी.एम.पी. एफ. की राशि का संयुक्त खाता खोलने का फैसला हुआ। उसमें भी मौसी को ठग लिया यूनियन के नेताओं ने। खाता तो ज्वाइन्ट खोला पर निकासी के लिए किसी भी एक के हस्ताक्षर से निकासी का अधिकार लिखवा दिया। मौसी इस मुगालते में रही कि उसके हस्ताक्षर के बिना तो पैसा निकलेगा ही नहीं। वह पास-बुक को बँदरिया की तरह हमेशा ब्लाउज के भीतर छाती से चिपकाए रही। पर पैसा निकलता रहा। मौसी को तब पता चला जब कुल सात हजार रुपया बचा खाते में।

भगवान बाबू के भतीजे को ट्रक 'किनना' था। पैसा दिया भगवान बाबू ने। भले कर्ज ही दिया। पर कर्ज लौटाने की नीयत से लिया गया हो, तब न कर्ज का पैसा लौटता! वह तो ठगने की नीयत से लिया गया था। पैसा भी गया, ट्रक भी नहीं आया, जिससे दोनों ने मिलकर कमाई करनी थी। गाय भी मर गई। मुर्गियाँ सब की सब, भतीजों के बच्चों ने एक-एक कर खा डालीं। बस सामान बचा था भगवान बाबू के कपड़े, बरतन-वासन सब थे।

“इतने सारे बरतनों की भला बुढ़ऊ को क्या जरूरत?” छोटी भाभी ने कह ही दिया था।

बस एक दिन छोटी भाभी की रसोई में जा टिके सब बरतन। भगवान बाबू के कमरे में, रात-बिरात पानी पीने के लिए गिलास-जग जरूर रह गए। मच्छरदानियाँ भी बच गई थीं दो-तीन ठो! एक भतीजा ले गया, एक दामाद ने ले ली। अब भगवान बाबू ठहरे 'भैसुर' (पति का बड़ा भाई)। भैसुर के नाते भला वे छोटी को क्या बोलते?

ग्यारह

मौसी मोहना को लेकर भाई के पास अपने गाँव, लौट गई।

“देखो रुपया बरबाद मत करना। मशीन खरीद लेना या गाय ले लेना। कुछ काम अपने बल पर करो कि कमाई हो जाए। भाई-भाभी ज्यादा दिन नहीं रखेंगे। पैसा खत्म हो गया तो निकाल देंगे या ऐसे तंग करेंगे कि तुम अपने ही भाग जाओ। जब तुम्हारे मन माफिक मरद मिल जाए तो ब्याह कर लेना पर तब भी कमाना मत छोड़ना। कमाओगी तो सब पूछेंगे, नहीं तो कोई नहीं पूछेगा।” रेणुकाजी ने मौसी को गाँव जाते वक्त ताकीद की।

मौसी को रुपया क्या मिला, उसे लगा कि वह उस रुपये से गाँव-भर का प्यार और इज्जत, दोनों किन (खरीद) लेगी। भाई-भाभी का आदर किन लेगी। हर हफ्ता खस्सी (बकरा) कटने लगा। बिरादरी का भोज-भात हुआ। पूरा का पूरा पाँच हजार रुपया खाने-पीने में ही चला गया। नाम तो खूब हुआ कि मौसी ने मन भर कर दम तक खिलाया। इससे मौसी को क्या मिला बिरादरी का बन्धन? बिरादरी के निषेध? बिरादरी का हुक्म? ‘यह करो यह न करो’ की आचार-संहिता? कैसे जियो? कैसे कमाओ? मौसी अपने बाकी दिन कैसे काटे इसका न उपाय, बताया-न ढँग। इससे भला बिरादरी को क्या मतलब? हाँ, अगर किसी से प्रेम हो जाए और बिरादरी को लगे कि उसकी नाक कट रही है, तो वह जरूर टाँग अड़ाएगी! अगर मौसी मुसीबत में है या मर रही है, तो किसे फुरसत है, उसे बचाने की? यह बिरादरी अब पुरानी बिरादरी नहीं है कि बाघ ने जंगल में किसी को

पकड़ लिया तो पूरा गाँव उठकर बाघ से लड़ने चल दिया। अब तो जंगल के सिपाहियों के व्यवहार और बेकारी ने, इन्हें भी स्वार्थी बना दिया है।

“भेरी लकड़ी छूट गई! उसकी लकड़ी फँस गई! हमें क्या मतलब?” यही मानसिकता पनपने लगी है।

“औरतों के बारे में भी अब वैसा ही कुछ हो रहा है। नहीं तो आदिवासी औरत को कोई ‘दिकू’ (गैर-आदिवासियों) को आदिवासी ‘दिकू’ कहकर पुकारते हैं।) छू तो दे भला? अब तो ‘दिकूओं’ की आदतें ही सीख रहे हैं आदिवासी भी। उनके भी मूल्य बदल रहे हैं। ढेर कारखाने अब ‘बजबजा’ रहे हैं इर्द-गिर्द। जंगल के भीतर घुसे आ रहे हैं क्रशर और ईट-भट्टे। आदिवासी का मन और मूल्य, दोनों ईट-भट्टे सा धुआँ रहा है। भीतर-भीतर जल रही है देह। जंगलों में तो आग रोज़ ही लगती देखता था आदिवासी समाज पर अब सब मने-मन जल रहे हैं धुआँ रहे हैं। भीतर लगी यह आग इन्हें लील जायेगी अगर ये चुप रहेंगे। सब ने मिल कर अगर अपने भीतर लगी आग को बाहर उगल दिया तो धूँ-धूँ कर जल उठेगा जंगल और जहान।

“बस ‘जिनगी’ (जिन्दगी) ढँकल है जंगल की बचल-खुचल, कटल-फटल पातर-सी पतली परत से। बाकी तो गाछ-बृछ, लतर-पतर-विहीन हो रहल है सब जंगल! हमरी ‘जिनगी’, सपाट बंजर धरती-सी, बिन जोते रह जात है।”

ऐसी बातें प्रायः घर-बाहर, दर-दुकान, सड़क-चौराहों पर बड़े-बूढ़े, जवान-बुतरू अपनी-अपनी समझ के माफिक करने करने लगे हैं। शायद धुँआ धधकने की तैयारी में है।

एक मशीन किन ली मौसी ने। मौसी की खबर बिन्दु, जो रेणुकाजी के घर रहने लगी थी, देती रहती थी।

“मौसी ने भाई-भाभी के और उसके बच्चों को नए कपड़े खरीदे हैं... मौसी ने एक पलँग खरीदा है... मौसी ने मोहना और भाई के लिए एक-एक घड़ी भी खरीद दी है... मौसी ने फिर गाय ले ली है।” आदि-आदि। जब वह बाजार जाती सब्जी लाने, तो बेन्दी से सब्जी बेचने या लकड़ी बेचने आई औरतें उसे खबर दे जातीं।

भगवान बाबू आते रहते थे, रेणुकाजी के पास उनके हजारीबाग यूनियन ऑफिस में। वे कहते “चलिए देवीजी पद्मा। जमीन का आन्दोलन कीजिए। सड़क के लिए लड़िए।”

रेणुकाजी का मन अब खट्टा हो गया था ऊब गया था। वे टाल जातीं। पहले तो उन्हें भगवान बाबू से ही चिढ़ हो गई कि उन्होंने मौसी को धोखे में क्यों रखा और इसे अकेला छोड़कर अपने गाँव क्यों चले गए? फिर धीरे-धीरे गुस्सा और चिढ़ कम होने लगे। उन्हें अब भगवान बाबू पर पहले जैसा विश्वास नहीं रहा था। पता नहीं कब क्या कर दें? इसलिए उन्होंने भगवान बाबू को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया। पहले जैसी स्थिति होती तो वे उनके कहने पर तुरन्त आन्दोलन करने को तैयार हो जातीं। मौसी के साथ किए गए बर्ताव से वे क्षुब्ध थीं और सशंकित भी, इसलिए वे भगवान बाबू से कटने लगीं थीं। भगवान बाबू भी अब ऑफिस में ‘चोर की नाई’ आते और चुपके से बिन्दु से मौसी का हाल-समाचार लेकर चले जाते।

उस दिन बिन्दु ने बताया, मात्र एक हजार रुपया रह गया है मौसी के खाते में, सब खर्च हो गया है। मौसी को बुलाकर रेणुकाजी ने पूछा, “अब क्या करोगी?”

मौसी ने कहा “देखो! क्या होता है, अभी तो भाई-भाभी पर भरोसा है। मोहना पढ़ ही रहा है। कल की कल देखेंगे!”

रेणुकाजी चुप हो गई। क्या कहें? बिन्दु खतरा भाँप रही थी पर मौसी कबूतर की तरह बिल्ली देखकर भी आँखें बन्द किए बैठी थी। ऐसे भी मजदूर वर्ग खासकर आदिवासी लोग ‘कल’ की योजना बनाने के आदी नहीं होते। वे प्रकृति और उसकी बनाई योजना पर निर्भर करते हैं। प्रकृति की ही नाई उन्हें अपनी मेहनत पर भी पूरा विश्वास रहता है। इनकी खेती, महुआ-सखुआ, जंगल-कटाई, सब का समय प्रकृति द्वारा निर्धारित है। समय पर महुआ-सखुआ फूलेगा-फलेगा-टपकेगा। समय पर बरखा आएगी धान रोपेंगे या छीटेंगे। कटनी-निकौनी करेंगे। घर धान से भरेगा और बाड़ी लौकी, कद्दू और निनुआ या भिंडी से। गाय, बकरी, बियायेगी। दूध और माँस मिलेगा। प्रकृति की तरह

ही सब नियमबद्ध-सा चलता है। उनका जीवन भी केवल आज पर निर्भर करता है कल पर नहीं। वे नहीं सोचते कल सूरज उगेगा या नहीं, आज वर्षा हुई है चलो, हल जोतेंगे। इस वर्ष वर्षा नहीं हुई अकाल पड़ा है भूखे मरना है या देश छोड़कर परदेश में काम की खोज में जाना है, सवाल उठता है तो फैसला ले लिया जाता है 'चलो परदेश चलेंगे सखुआ (एक पेड़) के फूल या बीज बीन लेंगे पर जिन्दा जरूर रहेंगे।' दिनचर्या में खलल पड़ जाए तो भी उन्हें स्वीकार्य है। खलल तो रोज ही पड़ता है। प्रकृति भी तो अपनी चाल-ढाल कभी-कभी बदल ही देती है। सो ऐसे खलल को स्वीकार करना उनकी आदत है। कल काम नहीं मिलेगा तो भूखे-उपासे लौट आएँगे पर भीख नहीं माँगेँगे! जंगल से जड़ें उखाड़ कर खाएँगे मर भी जाएँगे जैसे जंगल में गाछ मरता है और खेत में ओले पड़ने पर 'खड़ी' फसल। बादलों के लिए आकाश अगोरेंगे... जैसे जानवर और पंछी अगोरता है पपीहा और मोर अगोरता है। बादल बरसेगा तो ये भी चहकेंगे, फुदकेंगे जैसे चिड़िया चहकती हैं, फुदकती हैं। पर कल क्या होगा वे यह नहीं सोचते! जंगल का शेर-हाथी भला कभी यह सब सोचता है?

खतरा होता है तो हरिण की नाई इनके भी कान खड़े हो जाते हैं और पाँव कुलुँचें भरने लगते हैं। पास में हरबा-हथियार होता है, तो ये भी हाथी की तरह चिंघाड़ते हैं। तीर सध जाते हैं टाँगी तन जाती हैं बस। जैसा समय वैसी इनकी जीवन-शैली! चिन्ता-मुक्त हैं! 'कल क्या होगा' इन्हें इसकी फिक्र नहीं। आज अस्तित्व है, बस आज जियो इसे सुरक्षित रखो। कल बाद में आएगा, उसकी सोच, आज क्यों? मौत के बारे में नहीं सोचते ये लोग। मौत आती है आनी है आएगी। उस पर सोचना बेकार है। सम्भवतः इसी सोच के चलते आदिवासियों में 'बिरसा' से विद्रोही तो हुए, 'सिद्धु-कान्हु' से वीर तो हुए पर कोई सन्त-साधु-फकीर-वैरागी नहीं हुए। दलितों और पिछड़ों में सन्त-फकीर पैदा हुए जो साहित्य, दर्शन दोनों में दखल रखने के साथ-साथ विचारक थे विचार के स्तर पर विद्रोही थे। ये सब देश की संस्कृति के अंग थे। उसी में सुधार, जोड़-घटाव करते थे। इसके विपरीत आदिवासी समाज

जंगलों के भीतर अपनी ही संस्कृति जीता रहा और जीता है, देश की संस्कृति और धर्म के भीतर वास्तविक रूप में वह कभी भी नहीं रहा।

देश की संस्कृति मनुवादी सोच पर आधारित शोषणमुखी थी। आदिवासी समाज ने इसे कभी नहीं माना। वह कबीला संस्कृति में रहता रहा। सरना के पेड़ों को पूजता रहा, सभी को बराबरी के दर्जे पर रखता रहा। उसी में सुधार करता रहा। बाहरी हमलों को रोकता रहा, झेलता रहा, देखता रहा। अपना 'सरना' पूजना अपने पाहन को प्रतिष्ठित कर के रखना, उसकी दिनचर्या का बस यही एक अंग है। वह बाहर जाता है वह बाहरी संस्कृति में रहता है जीता है पर अपने घर लौटने पर वह सरहुल-सरना-हँडिया कभी नहीं भूलता। बाहरी दबाव का विरोध वह 'बिरसा' बनकर करता है भीतरी दबाव से आदिवासी औरतें अभी भी 'जनी शिकार' पर निकलती हैं। वह सरना के लिए लड़ता है सखुआ और महुआ पर आश्रित है। वह बैरागी बनकर विमुख नहीं होता न अपने से, न अपने परिवार और समाज से, न दुनिया से। वह भाग्यवादी सोच का शिकार भी नहीं बना, इसीलिए हमलावर लोग उसे गुलाम नहीं बना सके न देश पर हमला करने वाले न संस्कृति पर वार करने वाले। मिशनरियों या धार्मिक मठों व आश्रमों के माध्यम से धार्मिक हमला करने वाले भी, उसे उसकी जीवन-शैली, प्रकृति-प्रेम या अस्तित्ववादी सोच से विमुख नहीं कर पाए।

इधर अपसंस्कृति का हमला बड़े जोश-खरोश से सर उठा रहा है। माफिया भाँज रहा है। माफिया और रंगदारों को झेलते-झेलते, उनके खिलाफ लड़ते-लड़ते, आदिवासी युवा पीढ़ी भी अब स्वयं रंगदारी के रुआब-दबाव, उसकी पैतरेबाजी अपनाने लगी है। आदिवासियों के नाम पर, उन्हें अपना-अपना मोहरा बनाकर, राजनीतिक दल अपना प्रभाव बढ़ा रहे हैं, इसका उन्हें एहसास हो रहा है। इसलिए वे अब अपने मोहरा बनने की कीमत लगाने और वसूलने लगे हैं। वे अभी स्वयं एक शक्ति बनकर तो नहीं उभर पाए पर वे दूसरों का सन्तुलन बनाने व बिगाड़ने की औकात रखते हैं, इसका एहसास उन्हें हो गया है। यह एक शार्टकट रास्ता है और शार्टकट रास्ते की यही ललक उन्हें संगठित

नहीं होने देती। वे दलालों, रंगदारों से होड़ बढने लगे हैं। कुछ लोग तो अपने समाज के विकास के लिए संगठित न होकर, निजी लाभ के लिए समाज को भी ढाँव पर लगा रहे हैं। आगे बढे हुए अधिकांश लोग मौका मिलने पर अपने ही समाज का शोषण भी करने लगे हैं।

‘औरतें’ इस समाज में हमेशा ही ज्यादा खटती रही हैं। अब थोक माल में उन्हें सस्ते मजदूर के रूप में सप्लाई करना या व्यक्तियों के हाथ बेचना या अन्य गलत पेशों में लगना भी शुरू हो गया है। बाहरी दलालों की तरह इनके समाज में भी एक दलाल जमात पनप गई है। यह दलाल जमात बाहर के शहरी सपने समाज को दिखाकर, पुराने मूल्यों को नष्ट कर रही है। सपने तो सपने ही होते हैं, जिन्हें पाना संभव नहीं पर सपनों से भटकाव भयंकर रूप से पनपता है। भटकाव से उपजती है निराशा और फ्रस्ट्रेशन, जो अपराध-वृत्ति की जननी हैं। लोग समूह से हटकर व्यक्ति बन रहे हैं। आदिवासी समाज की खासियत उनका समूह में जिन्दा रहना ही है। उनका सामूहिक आचरण और समूह जब टूटता है, बिखरता है, तो उसका हथ्र बहुत बुरा होता है। समाज के साथ-साथ उनके मूल्य भी बिखर जाते हैं। आदिवासी समाज के साथ यही हादसा घट रहा है। उनका सामूहिक जीवन टूट रहा है। बढता औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, उनकी ग्रामीण सामूहिकता को नष्ट कर रहा है। हालाँकि खदानों, कारखानों में दंगलों के रूप में एक साथ रहकर खटना एक झोंपड़पट्टी के धौड़ों में एक ही स्थान पर रहना (दूसरी संस्कृति वाले लोगों के साथ उनके दबाव में या बराबर के दर्जे पर भी) सामूहिक तो है पर यह अलग किस्म की सामूहिक जिन्दगी है। दरअसल यह सामूहिकता अर्थवाद से अधिक जुड़ी है। ग्रामीण या जंगल का सामूहिक जीवन जिन्दगी से जुड़ा होता है। उनके लिए अर्थ यानी पैसा उतना महत्त्व नहीं रखता जितने रिश्ते या सम्बन्ध रखते हैं।

बारह

बहुत दिनों तक खबर नहीं आई मौसी की। एक दिन वह बिन्दु को माधो के साथ बाजार में मिली थी। वह दारू चुआने का सामान किन रही थी। फिर एक दिन आधी रात में माधो सर से खून टपकते-टपकते रेणुकाजी के कार्यालय में अपने दो-तीन साथियों और घायल भाई के साथ लाया गया। रात को ही उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया और पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज कराई गई। काफी चोटें लगी थीं उसे। दोनों भाइयों के सर में आठ-आठ टाँके लगे थे। खून भी चढ़ाना पड़ा था। मोहना और उसके भाई-भाभी घर से भाग गए थे। पुलिस जाँच में गई। एफ.आई.आर. में नामजद थे मोहना और भाई एवं अन्य कई लोग। पर मौसी ने न मोहना का नाम धरा, न किसी और का। वह कहती रही 'भीड़ ने आकर मारा' जबकि वह जानती थी मार करने में कौन-कौन थे।

मोहना अपनी बात रेणुकाजी को आकर बता गया था। मौसी डर या शर्म से जो भी समझो उनके पास नहीं आ रही थी। हालाँकि मार-पीट के केस में वह उन्हीं से पूरी मदद ले रही थी।

मौसी सोच की दुनिया से वापस अपने झोंपड़े की दुनिया में लौटी। दारू चुआने का सामान एक कोने में रखा था। आज भी मन नहीं हुआ कोई काम करने का। मोहना रात को छिपकर आता तो है पर बिना बात किए सो जाता। भाई-भाभी कभी कुछ पूछने नहीं आते। माधो अस्पताल में है। पुलिस माधो के बारे में पूछताछ करने आई थी और मौसी से तफ्तीश करके लौट गई थी। मौसी ने किसी का नाम नहीं धरा था। उसकी जबान पर मोहना का ताला लटक गया

था। मौसी फिर से माधो और उस दिन के घटनाक्रम में गुम हो गई।

आखिर क्या खराबी थी माधो में?” वह सवाल करती थी अपने से! दरअसल उसका यह सवाल पूरे समाज से था।

कोलियरी से लौटने पर रुपए-पैसे खत्म होते ही, भाई-भाभी ने कह दिया

५

“कोई काम खोजो या कोई दूसरा मरद करो, जे तोर खर्च चलाय सके। हमनी में ताकत नाय है तोर खर्च चलाए के।”

वह हाट में माथे पर हँडिया लेकर बेचने जा रही थी तभी उसे बस अड्डे पर ही माधो मिला था। कुछ दूर तक माधो उसके साथ-साथ ही गया था। उसे माधो अच्छा लग रहा था। गठा बदन, साँवली देह, सरू-सरीखा लम्बा। लाल-लाल पतले होंठ। छोटी पर तेज़ आँखें। तीखी नाक। ऐसी नाक गाँव में किसी की न देखी थी उसने। वह उसे किसी और धरती का दिखता था। अभी तक उसे ‘बूढ़े मर्दों’ की सेवा का ही मौका ही मिला था। हाँ! सलीम की महक जरूर सूँधी थी उसने! कितनी सुखद थी वह महक! माधो को भी देखकर वह व्याकुल हो जाती थी। सलीम की नाक भी ऐसी न थी। बस रंग ही तो साँवला था न इसका। वह कौन गोरी है? वह काले साँवले रंग के समर्थन में तर्क जुटाती। सलीम से किसी बात में कम न था माधो। मौसी के प्रेम को पाने का अधिकारी आदर्श पुरुष सलीम ही था अभी तक। उसी कसौटी पर वह अपने मन के मीत को परखती थी। बाकी तो मौलवी की तरह थे जो जबरन उस पर लादे गए थे। नेताजी के पीछे उसका नौकरी का स्वार्थ और सुरक्षा का भरोसा था, प्रेम न था। प्रेम उसने सलीम से ही किया था। अब वह फिर से प्रेम ही करना चाह रही थी। अब वह चालीस पार कर रही थी। इस उमर में अकेलापन अधिक खलता है। अपना कोई बच्चा भी न थी। मोहना पर जान देती थी पर मरद तो चाहिए ही था! उसकी भावनाओं के लिए उसकी देह के लिए उसकी आर्थिक मदद के लिए उसकी सुरक्षा के लिए और बिरादरी को ठेंगा दिखाने के लिए भी, मरद का होना उसके लिए जरूरी हो गया था। भाई-भाभी को यह बताने के लिए भी तो चाहिए था कोई कि

“देखो हम तुमरेई भरोसे पर न हैं, हमें चाहे वाला भी कोई है, जिससे जिनगी के दुख-सुख बतिया सकें।”

मौसी भी, दिक्कों की तरह दूर तक की सोचने लगी थी। लेकिन तत्काल उसे माधो ही की जरूरत थी उसकी दारू चुआने के काम में मदद करने, दारू के ग्राहक लाने और दारू बेचने के साथ-साथ उसकी रूह, उसके मन का मीत बन कर उसके साथ जीने के लिए प्यार के लिए। खाली हँड़िया बेचने से ही पेट नहीं चल सकता था, न ही मोहना की पढ़ाई का खर्च चल सकता था। इसलिए महुआ से दारू चुआना भी जरूरी था, जिसके लिए पुलिस को भी पटाने की दरकार थी। अब वह दूसरा रोजगार भी नहीं कर सकती थी। जंगल में लकड़ी काटने जाने में भी उसे शर्म लगती थी। कोलियरी के नेता के साथ रहने पर नेता की बीवी यानी नेताइन होने का अहम् उसमें भी आ गया था। ऐसे भी ज़रा-सा पैसा हाथ में आने पर सबसे पहला हमला गरीब मरद अपनी औरत पर ही करता है। अपना दूसरा ब्याह करके और औरत सबसे पहला हमला करती है, अपनी मेहनत की क्षमता पर यानी उसे काम से मुक्ति मिले, खासकर घर के काम से इसलिए वह अपने लिए एक कमिया रख लेती हैं। मरद का हमला श्रम पर भी होता है, पर वह प्राथमिकता में दूसरे नम्बर पर आता है। श्रम यानी हाथ से काम करने, शारीरिक श्रम करने से उसे लाज लगने लगती है। तब उसमें भी कोई ‘हौला-हलुक’ (हल्का) काम करने की चाह जगती है। उसे कुछ आराम की दरकार भी महसूस होने लगती है। यह काम के बाद आराम की चाह नहीं होती बल्कि बिना काम किए हल्का काम कर के कमाने की चाह होती है।

जब तक पैसा हाथ में रहता है, कोई खटने ही नहीं जाता। पैसा ‘खलास’ होने पर वह काम करने निकलता है। अगर कहीं ढेर सारा पैसा हाथ लग जाये तो वह कोई और काम करेगा, खटाली वाला काम करना नहीं, यानी छोटा काम नहीं। मेहनत का काम यानी शारीरिक श्रम केवल छोटे लोग करते हैं यह धारणा छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, सवर्ण-असवर्ण, सबके मन में बँधी हुई है। इसी के चलते काम करने वाले भी न काम करने वालों की जमात में

शामिल होने का सपना पालने लगते हैं। खुशहाली का मतलब 'बिना खटे पैसा पाना' ही माना जाता है। यह धारणा दिक्कुओं से मेलजोल के बाद उस आदिवासी समाज में भी आ रही थी। आदिवासी समाज के लोग काम को छोटा नहीं मानते। शारीरिक श्रम इन्हें कचोटता नहीं। दरअसल कल की कल सोचने की आदत, इन्हें दो दिन की कमाई एक दिन में पा जाने पर दूसरे दिन नागा करने या दारू पीकर 'सूतने' के लिए प्रेरित करती रही है। श्रम की उपेक्षा की मानसिकता इनमें आमतौर से नहीं पनपी।

सो मौसी अब कैसे टोकरी ढोएगी? वह तो मौलवी की बीवी, नेताजी की 'नेताइन' रह चुकी है। सलीम की प्रेमिका तक वह एक खटने वाली, एक सबल खुदसर औरत थी, फिर वह परजीवी बन गई। अब माधो को वह अपने धन्धे का साथी बनाकर, जीवन का साथी भी बनाना चाह रही है। काम करेगी पर काम का रूप दूसरा होगा। सो माधो हर रोज़ सवेरे आ जाता। दोनों मिलकर दारू बनाते। मोहना भी साँझ में आकर मदद करता। ग्राहक आते। मौसी दारू गिलास में ढाल-ढाल कर देती। घर में कलाली खुल गई। पुलिस वाले, फोरेस्टर-रेंजर भी गाहे-बगाहे रुककर, एक-आध गिलास चढ़ा लेते। माधो और उसका भाई हरदम लाठी लेकर तैयार रहते ताकि, कोई बेजा हरकत न करे। मोहना चुपचाप देखता रहता पर वह बोलता नहीं था। उसे माधो से नफ़ रत थी। माधो मौसी के बहुत नज़दीक हो रहा था। भगवान बाबू तो रात को ही या कभी दिन में ड्यूटी के बाद घर आते और मौसी उनकी सेवा करती थी। बाकी समय मौसी मोहना की देखभाल करती। मोहना को भगवान बाबू फुआ के मरद कम, बाप या दादा ज्यादा नज़र आते थे। वे मौसी और मोहना के प्यार के बीच में नहीं आते थे। पर माधो तो हरदम मौसी पर छाया रहता था। मोहना के लिए समय कहाँ है मौसी के पास! स्कूल की फीस देने या किताबें और ड्रेस दे देने से क्या सब पूरा हो जाता है? उसे मौसी से जो तवज्जो पहले मिलती थी, उसमें कमी आई थी। मोहना बड़ा हो गया था पर मौसी का प्यार पाने के लिए उसकी सोच अभी भी बच्चे की सोच ही थी। वह प्यार पाना चाहता था। मौसी भी प्यार ही पाना चाहती है। मौसी ने केवल प्यार बाँटा था

जीवन-भर। अब उसे खुद प्यार की दरकार थी। अब उसे भी प्यार चाहिए था। उसे भी चाहिए था कोई, जो उसकी चिन्ता करे और कहे

“चल, तू थक गई होगी जा आराम कर, जा के? बाकी काम मैं देख लूँगा ...”

मोहना तो हमेशा कहता “यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ।” जो काम हो जाता उसका वह नाम ही नहीं लेता।

माधो हमेशा मौसी की हर बात पर जान देने को तैयार रहता। शायद ईर्ष्या पनप रही थी प्यार और मनुहार के बीच। बेटा मनुहार चाहता था। मौसी प्यार चाहती थी। मौसी को प्यार दे रहा था माधो और मौसी से मनुहार माँग रहा था मोहना! यहीं विवाद की जड़ था। मनुहार-प्यार, सब गड्ढमगड्ढ हो रहा था।

अब हर रोज़ माधो उसके घर आने लगा था। मुर्गा कटता था। हमेशा की तरह ही ‘चखना’ लाने मोहना को जाना पड़ता था। देर रात गए ग्राहक निपटाने के बाद महुआ का दौर चलता था। पहले तो माधो ही दारू लेकर बाहर जाकर बेच देता था और हिसाब लाकर साँझ में मौसी को दे देता था। शुरू-शुरू में मौसी उसे ‘बलजबरी’ (जबरदस्ती) रोक लेती थी। माधो भी रात को दो-तीन घंटा उसके साथ पिए और बिताए बिना न रहा पाता था! अब तो घर में ही ग्राहक आने लगे थे। कई बार रात को माधो वहीं रुक जाता। माधो का भाई काम-काज करके अपने घर लौट जाता। मोहना बाहर ‘सूत’ जाता। माधो और मौसी को रात गए खाते-पीते, हँसी-ठट्ठा करते बीत जाता। मोहना बाहर बरामदे में कुढ़ता रहता। कई बार मौसी देर रात गए माधो को घर से बुला लाने मोहना को ही भेज देती थी।

मोहना ने एक-दो बार मौसी से कहा भी था “फुआ तू मुझे प्यार नहीं दे सकती, तो माय-बाबा के पास ‘घुरा’ (लौटा) दे मुझे। मैं तुझे प्यार कर सकता हूँ फुआ, पर मुझे अब कोई और नया फूफा मंजूर नहीं है। फिर माधो तो छोट-जात है। भगवान बाबू तो ठाकुर थे। ‘नेताजी’ थे। ई छोट जात, ई सुअर पालने वाला खेत का कमिया जिसके पास न जमीन, न खेत, न

रोजगार, न गोरू, न हल-बैल, ई जो तोर पर आश्रित है, कैसे मोर फूफा हो सकत है?”

दारू के धन्धे में माहिर और उसका धन्धे का हिस्सेदार अच्छा-खासा देहदार माधो, मौसी का हकदार हो जाएगा उसे रखने का सपना पालने लगेगा यह उसकी सोच के बाहर था।

“मौसी को भी क्या हो गया? वह क्यों इस ‘दुसधवा’ पर मरती है? बिरादरी में भी बात उठ रही है। ठाकुर या मियाँ की बात दूसर थी पर दुसाध के साथ हमनी होड़ (आदिवासी) लोगन की औरत...?”

सोच-सोचकर मोहना गुस्से से भर उठता। वह मौसी और माधो के सम्बन्ध के खिलाफ, तर्क के तीर गढ़-गढ़कर अपनी तरकस में जमा करते जाता। वक्त आने पर छोड़ेगा अपनी तरकस में जमा सभी तीर, जिन्हें वह बिरादरी के विष में बुझा-बुझाकर जहरीला भी बनाता जा रहा था।

तेरह

माधो दुसाध था। शहर में आने-जाने से वह जान गया था कि “वह छोट-जात है तो क्या! हरिजन है वह। सरकार ने हरिजन-आदिवासी को गांधी बाबा के हुक्म से बड़े अधिकार दिए हैं। अगर कोई नेता या मुखिया-सरपंच उसकी मदद कर दे या ब्लॉक का बाबू दया कर दे, तो उसे जमीन भी मिल सकती है। पर वे सब तो, काम करवाने के लिए घूस माँगते हैं। मदद मिलती तो है पर आधा पैसा कर्मचारी खा जाते हैं। सरकारी कर्ज लेकर कारोबार करने का मतलब है घर के दरवाजा, चौखट, खटिया, हैंडिया की एक न एक दिन लीलामी करवाना। अब इस पचड़े में कौन पड़े? इसलिए सबसे सस्ता सुविस्ता काम है दारू चुआना, खेतिहर मजदूर बनकर दूसरे के खेत पर खटना या जंगल से लकड़ी चुराकर लाना और बेचना।”

अब बेन्दी में राजपूतों का रुआब पहले जैसा न था। एक ब्राह्मण सबके हाथ जोड़-जोड़कर मुखिया बन गया था। उसने राजपूतों से उनका जजमान बनकर वोट लिया, तो दुसाध-चमार के सामने गरीब ब्राह्मण बनकर वोट ठगा। आदिवासी को तो ‘पाहन’ बनकर अपने पक्ष में पोट लिया। सभी जात का आपस में झगड़ा कराने में माहिर था वह। उसने एक ट्रक भी किन लिया था। माधो ने खलासी का काम माँगा तो नहीं दिया। बाहर से लाकर किसी को रख लिया।

“गाँव की ट्रक और नौकरी बाहर वाला पावेगा। वाह! अगली बार एको वोट देने नहीं देंगे आपन जात के।” माधो ने बार-बार संकल्प किया। बड़ी

चर्चा रही माधो के इस संकल्प की। सभी ने मुखिया को 'दूसा'। पर ब्राह्मण जात है। क्या फरक पड़ता है? ब्राह्मण का दोष तो हो ही नहीं सकता कभी। वह तो श्राप दे सकता है। उसे कोई श्राप लगता थोड़े ही है। हाँ, वोट के दिन जरूर फँसेगा वह अगली बार।

गाँव में प्राइमरी स्कूल है। माधो उसी स्कूल में पाँचवीं तक पढ़ा था। अब उस स्कूल की छत गिर गई थी। मुखियाजी मरम्मत का पैसा भी खा गए थे।

“सार (साले) दुसाध-चमार पढ़ जैते, तो हमनी के खेत के जोतते? के हमनी के कहवै पाँव लागो बाबाजी” वे प्रायः कहते।

अब पेड़ के नीचे पढ़ते थे बच्चे। मास्टर कभी आता, कभी आता ही नहीं। हरिजन, आदिवासी बाहुल्य होने के नाते इस पंचायत को यह स्कूल हरिजन कोष से मिला था। एक बार हरिजन शिक्षक आया था। वही बटोर-बटोरकर हरिजनों लड़कों को स्कूल में बिठाता था।

“बाकी कौनो ध्यान ही ना देयल रहे। हम पढ़ गेयल हैं कुछो, तो आज हिसाब-किताब करके जान गेयल हय। नाय तो ई 'सरवन' सब ठग-ठग के हमर से दुगना सूद तो लेते रहल। महाजन तो जो हैं सो हइये ही हैं। ई बामन भी कोनो कम नाय हैं। जमीन बेच-बूच के सब राजपूत की महरारू भी अब सूदे का धन्धा शुरू कर देयल है। आपन कमिया के सूदे पर पैसा देत हैं और डबल पैसा उगाहत हैं। अब ठकुराइन और बभनी (भूमियार औरतें) सब कमाई सूदे में धरा लेत है। कोलियरी में कुछ बाबू साहब ढेर सारा पैसा कमाय के ले आयले हैं। अब उकरे पर ही हीरो होंडा पर घूमे लगल हैं। फू-फाँ करत हैं। किसी को कुछो नाय समझत हैं। पर 'मौसी' के कोई ना ठग सके है। ऊ भी तो कोलियरी में नेताजी के संग रहके सब सीख गयल है।” माधो मन ही मन सोचता रहता।

यही सब सोचकर माधो का मन मौसी के प्रति आदर से भर जाता। मौसी न केवल उसे सुन्दर लगती थी बल्कि बहादुर भी लगती थी। उसका माधो से आना-जाना हुआ तो कई लोगों ने टीका टिप्पणी की कि छोट-जात है। पर मौसी ने टका-सा जवाब दे दिया था, “मोर मन, जो हम चाहब वहीये करब। तू कौन है हमर बाप बने वाला?”

माधो मौसी की हर बात को वरदान के रूप में लेता था। मौसी द्वारा मांगी गई मदद को भी वह अपने पर एहसान मानता था।

“कौन कमी है मौसी पास? फिर भी हमर से प्यार करत है ऊ?”

इसी सवाल का जवाब खोजने की उधेड़बुन में फँसा रहता माधो। जब मौसी के पास जाता तो उसे वह साक्षात् देवी दुर्गा या काली नज़र आती! वह उसका भक्त था और 'प्रेमी' भी। पर पता नहीं क्यों उसने कभी 'पारवती' का 'शिव' बनने का सपना नहीं पाला। पारवती की लाश अपने पर कन्धे पर लादकर, तांडव करने वाला शिव का कन्धा उसके पास नहीं था और न ही था शिव-हस्त। वह उसे, अपनी औकात की हद में भी नहीं मानता था। उसने शिव-सती की कथा भी नहीं सुनी थी। यह सब सुनना तो 'बड़कन' धनी लोगों का काम है। वह तो वर्जित जमात से है न। ऐसे छोटानागपुर झारखण्ड में चौपाल पर चैता गाने या रामायण पढ़ने का चलन नहीं रहा कभी। इधर तो करमा में कदम गाछ काटकर, 'सखुआ खोंछ' कर सब जनी-मरद नाचते हैं। सरहुल मनाते हैं। रामनवमी की झाँकी निकलती है, रामनवमी और मुहर्रम का झंडा उठता है। राम ने भिलनी के घर बेर खाए थे, ये कथा प्रचलित है। अब कोई-कोई इन्हें यह भी बताता है कि यहाँ के आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं, जिन्हें आर्य असुर कहते थे। यह झारखंड है। दिक्कतों ने इसे बरबाद कर दिया है। आरा-छपरा वाले लोगों ने लूटा है। अब अपना राज लेकर रहेंगे झारखंडी सब। उनका चिह्न मुर्गा था अब तीर और नगाड़ा हो गया है। मौसी में उसे माँ, बड़ी बहन और पत्नी के रूप दिखते थे। उस पर वह मुग्ध था, मोहित था पर लट्टू या आशिक नहीं था। उसकी आशिक बनने की औकात कहाँ थी? मजनुँ का किस्सा उस जैसे लोगों की सोच के बाहर था। वह उस पर मुग्ध था पर उसका प्यार उस रिश्ते को हिकारत से भरकर नहीं देखता था। भयभीत जरूर था चूँकि अपनी औकात का एहसास उसे था। उसकी औकात सूरदास की भक्ति जैसी थी। इसलिए बस वह मुग्ध था मोहित था मौसी के रूप पर, जिसे वह सबके सामने आँख भरकर देख भी न सकता था। उस रूप के उपयोग की कामना

भी नहीं पाली थी उसने, चूँकि उसमें उसके उपयोग की हिम्मत न थी शायद। या उसने कभी दैहिक रूप में उसे पाने की कामना ही नहीं की थी। बस वह मुग्ध था उस पर।

शायद इतनी नफासत तक उसकी कल्पना नहीं जा सकती थी। उसके डैने छोटे थे। उसकी जाति और अशिक्षा ने उसके पंख कुतर दिए थे। मौसी उसे पाने के लिए उद्यत थी कटिबद्ध थी। वह मीरा के रूप में 'माधो' की दीवानी नहीं थी वह उसे पाना भी चाहती थी और उसके सहारे जीना भी। वह उससे सुरक्षा भी पाना चाहती थी चूँकि वह औरत थी। ऐसे समाज की औरत जहाँ, वह केवल एक 'जिन्स' (चीज़) समझी जाती है मनुष्य नहीं! हर 'जिन्स' को सँभालकर रखने वाले बलिष्ठ हाथों की जरूरत उसे होती है, जो उसे साफ-सुथरा रखें, उसे टूटने-फूटने से बचाएँ, गुम होने, लूटने-लुट जाने से बचाएँ, उसे निखारे-सँवारे और प्रेम करें, भोगें और अपने कब्जे में रखें भी, अपना कहे, अपनाएँ। यह तो आदमी की फितरत है कि वह खुद सोच सकता है, निर्णय ले सकता है पर औरत को सोचने की क्या जरूरत? वह तो बस औरत है न! उसके लिए तो सोचने के लिए बाकी सब मादवन हैं ही। वह तो 'जिन्स' है न जो जिन्स, अपने बारे में सोचा नहीं करती।

ठीक उसी तरह इसी समाज में माधो की बिरादरी वालों की स्थिति है, जिन्हें सदियों से, अपने से सोचने की मनाही रही है, जो केवल सेवा के लिए बने थे। मौसी और माधो का यह रिश्ता भी उन्हें करीब ला रहा था। दोनों परजीवी हैं। औरत होने के नाते मौसी पर बिरादरी, भाई-भाभी-भतीजा सब हावी थे। उसके विधाता थे। दलित होने के कारण माधो को समाज की तीन सीढ़ियों यानी जातियों का भार अपने माथे पर सहारना पड़ता था। वह अपने बारे में सोचे, कहाँ फुरसत थी उसे? इसकी इजाज़त भी तो नहीं थी?

“मुझे आदमी कब समझा है समाज ने? आज भी तो गाँव में हमारे टोले में कोई हमारे नल से पानी नहीं पीता। बस, वोट के दिनों में जरूर सबसे ज्यादा हमारे टोले में भीड़ लगती है। दंगा हो तो धर्म की खातिर हम ही लोगों को

मार करने के लिए ले जाते हैं। यह धर्म ही तो हमें न तो सटने देता है और न ही फटकने। अब भले कानून बदल गए, पर इस बड़ी जात वाले 'मनुष्यों' के मन अभी भी नहीं बदले। मज़ाल है कि 'बड़कन' की टोली में कोई दुसाध या चमार अपना झोंपड़ा छान ले। हमनी तो गाँव के बाहर ही रहते आए हैं सदियों से गाँवों के 'बड़कन' की बेगारी करने खातिर।" माधो सोचने लगा था।

चौदह

उस साँझ माधो अपने भाई के साथ रोज़ की तरह ग्राहक निपटाने आया था। पता नहीं क्यों माधो को आज कुछ फरक लग रहा था। कुछ दूसरी तरह देख रही थीं उसे नज़रें। उसे देखकर सब कोई अपने साथी के कान में कुछ फुसफुसाने लगता। मोहना भी आज न जाने कहाँ गायब हो गया था! माधो सब अनदेखा कर के, सबकी तीखी नज़रों को झेलते हुए, ग्राहकी का हिसाब-किताब देकर जल्दी लौटना चाह रहा था। मौसी के लिए वह अपने से भी ज्यादा चिन्तित था।

“आज रात हमर के घर जाए दे तू। आज कुछ ठीक नाय लगे है। सब खुसुर-फुसुर कर रहल है। तोर बिरादरी वाला तोरा दिक (तंग) करतै तो हम आईज रात के तोर संग रह जायब। हमर के कुछ गड़बड़ लग रहल है?” माधो ने कहा भी और पूछा भी।

“का कर लेब कोई? मोर मन है। हम राजी तो दूसर के का मतलब? बिरादरी के कम पैसा नाय खिलाया है? अब मोर पास सब पैसा सिराय (खत्म) गेल, तो हम तो आपन गुजर-बसर और जिनगी खातर सोचबै-सोचबै? हम तो सबनी के देख-भाल कर ले। आखिर कोई हमरो देखे वाला चाही न? जे हमर मान देतै, हम उकरे संग रहब। हम तोर नाय जाय देब आज, चाहे हमरा के मार-मार के मोराय दे सब।” मौसी ने हठ करते हुए कहा।

मौसी मरने को तैयार है तो माधो कैसे पीछे रहेगा? वह तो मौसी की खातिर ही लौट जाना चाह रहा था। मौसी की बातों से उसका साहस बढ़ गया।

पहले खबर होती तो अपने टोले वालों को जुटा कर ले आता पर अब तो समय नहीं है। रात तो काटनी पड़ेगी। फिर भी सावधानी के लिए उसने अपने छोटे भाई को बाहर बिठा दिया। मोहना तो 'साँझ' से ही बाहर था।

रोज़ की तरह 'चखना' और दारू का दौर चल ही रहा था कि बाहर से माधो का भाई चिल्लाया "मार डाला रे बचावा-बचावा।" ओढ़का हुआ दरवाजा ठेल कर कई लोग अन्दर आ गए। इनमें कई लोग तो अभी-अभी वहाँ से दारू पीकर गए थे। मोहना सबसे आगे था। मौसी को मोहना के इस रुख और रूप पर विश्वास नहीं हो रहा था। मोहना जिसे आँचर में लिया, जिसका गूँ-मूत किया, पाला-पोसा, बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, जवान किया, वही आज...?

"नाक काट दी है फुआ ने हमारी।"

माधो पर लाठी का वार करते हुए मोहना चिल्लाया, "मार साले को, चला है फूफा बनने... मोहना का फूफा!"

माधो पर तड़ातड़ लाठियाँ बरसने लगीं। मौसी ने माधो को बचाने के लिए अपनी देह से उसकी देह झाँप ली। फिर तो मोहना ने लाठी रोककर लप्पड़-थप्पड़, घूँसा-मुक्का, लात-जूता, जो हाथ में आया उससे माधो को पीटा साथ में मौसी भी पिटती रही थी पर उसने अपनी देह माधो से अलग नहीं होने दी। माधो बुरी तरह घायल हो गया था। माधो का भाई, पहले ही खून से लथपथ दुसाध टोला में जा पहुँचा था। दुसाध टोले के सभी जवान लड़के जुटकर भागते-भागते आ गए थे। मौसी पिटती जा रही थी पर माधो पर वार न होने दे रही थी। पहली लाठी की चोट से ही वह लहू-लूहान हो गया था। उसका सर फट गया था। दुसाध टोला लाठी, टाँगी, ढेला से तैयार होकर गया था। मुंडा लोग लाठी और तीर से लैस थे। सवाल औरत का नहीं था। सवाल था समाज की कटने वाली नाक का। नाक, जो भोज-भात करने पर जुड़ जाती है। कोई समर्थ सामने आ जाए तो नाक कटती ही नहीं। दबी नाक भी ऊँची हो जाती है या कटकर तुरन्त आ जुड़ती है, जैसे कभी कहीं कुछ हुआ ही न हो। कटने का निशान तक बाकी नहीं रहता। कमज़ोर लोगों की नाक ज्यादा और जल्दी कटा करती हैं। समर्थ की नाक सख्त और समर्थ होती है न।

जमकर मार हुई। दोनों तरफ लोग घायल हुए। मौसी ने माधो को, उसके साथियों के साथ रात को ही रेणुकाजी के यहाँ भेज दिया। वह काफी घायल था। थाना-पुलिस-अस्पताल सब-कुछ हुआ। आदिवासी आमतौर से अस्पताल अपने से नहीं जाते। फिर वह तो मार करने वाले दल के थे, इसलिए भी वे थाना नहीं गए, कि पकड़ा जाएँगे। उलटा केस (काउंटर केस) करने की बुद्धि या क्षमता अभी उनमें नहीं थी। ये सब तिकड़म तो बड़ी जाति वाले करते हैं, जो मारते भी हैं और थाना में मार खाने की सन्हा भी दायर करवा देते हैं। रेणुकाजी ने एफ.आई.आर. दर्ज करवा दी थी। उसमें मोहना नामजद था। पर जब पुलिस मौसी से पूछने आई, तो उसने न मोहना का नाम लिया न गाँव वालों में से किसी का।

‘भीड़ आई, मारने लगी’ वह यही कहती रही। मोहना जिसे उसने पाला था, उसी ने उसे मारा था, जो अब बेटा नहीं मरद बन गया था। उसे अब मोहना से डर लगने लगा था चूँकि वह अब माधो से इसलिए चिढ़ने लगा था कि उसने मोहना के हिस्से का प्यार बाँट लिया।

माधो अभी अस्पताल में ही था। माधो का पूरा टोला उस पर खूफ था।

‘औरतिया के चक्कर में जान गँवाए जात रहल। औरतिया गवाही तक नाय देलके। खून-खून होत है ना। मोहना को और आपन सब बिरादरी के बचाय लेलके। हमर के काहे ले ऊ बचौते? जेहल में सड़ते रह जायब।’

अब माधो कैसे उन्हें समझाता कि मौसी ने सारी मार अपनी देह पर झेली थी। यह तो वह पहली लाठी धोखे से खा गया था। फिर भी माधो को कहीं कुछ कचोटता जरूर था।

“काहे मोहना का नाम नाय बोलले एतन मार खाय के बाद भी!” माधो के होंठ हिलकर फुसफुसाते हुए अपने से ही पूछते रहते।

“मोहना के बचपन से पालले थी न!” कोई आवाज़ उसके भीतर से जबाब देती पर वह सन्तुष्ट नहीं होता इस जवाब से।

“छोट-जात हूँ मैं..., क्या इसलिए नाय बोली ऊ? कि ऊ कमजोर भय गेल है? हौसला हार गेल है?” मन ही मन वह सवाल करता जाता, जिनका जवाब उसे नहीं मिलता!

शंका और मजबूत होकर सर उठाती “हमर खातर बिरादरी नाय छोड़ सकत है ऊ शायद। ऐही खातर आपन सब लोगन के बचाय लेलके।”

इन्हीं सब प्रश्नों-उत्तरों से जूझता माधो अस्पताल की छत की कड़ियाँ गिनता रहता। पंखे ने कितने चक्कर काटे वह हिसाब रखता।

फिर भी मन काबू में न रहता।

“काहे ऊ गवाही नाय देलके? मोर से बढ़के था का मोहना? बिरादरी जादा थी? हमनी दोनों कौनों देश भाइग जैते। इहाँ नाय रहते। अब कौन मुँह लेके टोला-मुहल्ला वालों से कहब उकरा (उसे) घर ले आयब, ब्याह करब!” यह सवाल वह मन ही मन दोहराता। उसका मन होता कि वह घर जाकर मौसी से यह सवाल पूछे पर कैसे जाये उसके घर? टोले वाले हँसेंगे उस पर “बड़ा चला था मजनुँ बनने?”

लाठी की मार और सिर के घाव से अधिक गहरा उसके मन का यह घाव था, जो भरता ही नहीं था। सिर जुड़ गया था खून जो बहा था फिर से शरीर में बन भी गया था पर मन जो फटा कैसे जोड़े उसे वह। चाहकर भी जोड़ न पा रहा था। अस्पताल से खारिज होते ही वह गाँव के बदले परदेश भाग गया। मोहना भी फुआ का घर छोड़कर अपने माय-बप्पा के यहाँ रहने लगा। भाई-भाभी ने मौसी को टोकना भी बंद कर दिया। मौसी का पैसा भी खत्म हो चुका था। मार के बाद दारू के ग्राहकों का आना भी अभी चालू नहीं हुआ था। फिर से मौसी ने दारू चुआना भी शुरू नहीं किया था। वह दिन-भर मुँह ढाँपे पड़ी रहती। मन होता तो रात को ‘राँध’ लेती और बासी भात खा लेती। दिन भर ‘भूखले’ रहती।

दोनों तरफ के लोग पकड़ाए। गवाही के अभाव में केस खारिज हो गया। लोग छूट गए। कुछ सिर फूटे थे, कुछ हाथ-गोड़ टूटे थे कुछ तीर के घाव पके थे। फटे सिर टाँकों से जुड़ गए कुछ लाठी के फूले घाव, हल्दी-नमक के लेप से ठीक हो गए। कुछ हड्डियाँ टूटी थीं कुछ प्लस्टर से, कुछ बिना प्लस्टर जुड़ गई थीं... कुछ सीधी और कुछ मार की याद ताज़ा कराने के लिए हमेशा के लिए टेढ़ी ही रह गई थीं।

पन्द्रह

भगवान बाबू इधर कई दिनों से हजारीबाग नहीं आए थे। एक दिन बिन्दु ने रेणुकाजी को बताया

“आए हैं भगवान बाबू।”

“बुलाओ तो ज़रा”, रेणुकाजी ने कहा।

भगवान बाबू आए। कुछ मुरझाए-से, उदास-से।

“क्या हुआ?” रेणुकाजी ने पूछा।

“महज गलती हो गई देवीजी, जो हम आपकी बात नहीं माने। मेरा सब पैसा भतीजों ने ले लिया। भाई मर गया। अब गाँव में कोई नहीं गदानता है। सारा पैसा ख़लास हो गया है जी। भाई जिन्दा था तो हमसे उसने ट्रक किनने के लिए पैसा उधार लिया था, पर अब कोई कर्जा लौटाने को तैयार ही नहीं है। भतीजे को कॉलेज में भर्ती करवाना था, सो भी मैंने ग़ुठ लिया था। आखिर किसके लिए था मेरा पैसा? बहुएँ भी बचवन को भेज-भेजकर इस-उस बहाने पैसे माँगती रहीं और हम देते भी रहे। काहे ले कंजूसी करेंगे। अब जब पैसा खत्म हो गया तो हमने फसल में हिस्सा माँगा। अब सबने आँखें फेर ली हैं जी। आवभगत खत्म हो गई, सो अलग। अब हमरा के ‘खाली बैठे वाला’, ‘खाने वाला’, ‘डकारने वाला बुढ़ऊ’, कहने लगा है सब। कर्जा लौटाने की बात तो दूर, खाना देने में भी आनाकानी करते हैं। “हमने उनकी बात न मानकर बड़ी गलती की।” ‘उनकी’ से (उनका अर्थ मौसी से था)।

उनके मुँह पर पछतावा पुता हुआ था। परिवार के लोगों की हिकारत-भरी

नज़रों ने उनका शरीर गलाकर आधा कर दिया था। मौसी की याद अब उन्हें बराबर आने लगी थी। रेणुकाजी से बात चलाने के लिए उन्हें डर लगता था। इसलिए वह बिन्दु को माध्यम बनाकर मौसी से बात चलाने की कोशिश में थे।

कभी वे सोचते, “क्यों नहीं उसकी (मौसी की) बात मानी?

...काहे नहीं मोहना का ही ब्याह करके घर में बहू ले आए?

घर में बहू आ जाती तो वह ज्यादा सेवा करती हमारी।...

...कहाँ साथ दिया जात या जात की बहुओं ने?...

...कहाँ भाई या भाई की औलाद ने लिहाज किया?...

...कहाँ परहेज़ किया भतीजों ने अपने चाचा को धोखा देने से?...

...जात से तो वह कुजात मौसी ही भली थी, जो उनकी सेवा तन-मन से करती थी। एक नौकरी ही तो माँग रही थी वह...!

...वह खटती तो भी तो मुझे ही खिलाती-पिलाती, सेवा करती! एक मोहना के ही तो पालना था।...

...मेरे घर नहीं जाना चाहती थी वह तो इसमें क्या गलत था?...

“...ठीके तो कहती थी। जब मेरी नहीं देखभाल की सबने, तो उसे कौन पूछता? उसे तो मार ही देते वे लोग।” भगवान बाबू सोच-सोचकर विचलित हो जाते।

वे बिन्दु से मौसी को मनाने के लिए कई बार कह चुके थे। इस बार मौसी की दुर्गति का हाल सुना तो सीधे बेन्दी जा पहुँचे। माधो के बारे में बस से उतरते ही मुखिया की दुकान और बाबू साहब के टोले में सुन लिया था। उन्हें माधो से कोई मलाल न था।

“ऐसे तो चलता ही है जी। औरत है न! आखिर लतर को चढ़ने के लिए गाछ (पेड़) तो चाहिए ही। चाहे वह हरा-भरा जवान पेड़ हो, चाहे सूखा-खूँसट ढूँठ। हरा-भरा होगा तो लतर ऊपर की फुनगी तक चढ़कर फूलेगी-फलेगी, डाल-डाल, पात-पात को हरा-हरा कर देगी। दोनों इक-दूजे को हरियाते रहेंगे। सूखा होगा तो उसी अधनंगे ढूँठ को ऊपर से नीचे तक

दोहरी-तिहरी होकर अपने को तोड़-मरोड़ कर ढँक देगी उसी के सहारे जिन्दा रहेगी। अब जो अगल-बगल होगा, उसी पर चढ़ेगी न। कोई न मिले तो 'जमीने' पर पसर जाएगी। लतर के लिए दोनों में कोई फरक नहीं। वह तो कमज़ोर है न। अपने बूते गाछ की तरह थोड़ी (थोड़े ही) खड़ी रह सकती है। आखिर हमने कब बनने दिया है औरत को गाछ? जब-जब वह गाछ बनने की सोचने लगती है तो मार-मार कर लोग उसकी रीढ़ तोड़ देते हैं। उसे बिना रीढ़ के जीने को मजबूर कर देते हैं। बिना रीढ़ वालों को सहारा तो चाहिए ही न! माधो का हो या मेरा। माधो उसे सँभार सकता था, इसलिए उसे मारकर भगा दिया सबने। मैंने भी तो वक्त पर साथ नहीं दिया। जब वह मेरे साथ थी तो वह कहाँ वह किसी माधो की खोज में निकली थी? ओह, कितना दुख पाया उसने?" भगवान बाबू अपने को कोस रहे थे, धिक्कार रहे थे, जैसे मौसी की दुर्गति के वही जिम्मेवार हों। 'न वह गाँव जाते न मौसी यहाँ आती' यही सोच-सोचकर वे बेचैन हो रहे थे।

सोलह

भगवान बाबू गाँव पहुँचे। मौसी हँड़िया तैयार कर रही थी। अँगना में बैठी, सूनी आँखों से भगोने (पतीले) से उठती भाप को देख रही थी, जो बूँद-बूँद बन हँड़िया में टपक रही थी। यह 'बूँद-बूँद' अर्क थी। भात का निचोड़ जो नशा है 'मातल' (मस्त) बना देता है। भात 'मातल' नहीं बनाता पेट भरता है। आदमी भात खाके अघाता है, पर यह बूँद-बूँद अर्क? यह रस, जो मीठे भात से निकलकर, तीता हो जाता है, उसे जो भी पीता है उसके होश पी जाता है वह। मौसी को महसूस हो रहा था, समाज ने इसे अघा कर पिया और पचा लिया। अब वह जो बची है, वह उसका भी अर्क निकालकर परसना चाहता है, समाज उसे मिल बाँट के खाना-पीना चाहता है, पर वह अपने को न तो बँटने देगी और न ही परसने। वह समाज का गम भुलाने के लिए नशा बनकर नहीं छाएगी। वह तो भात ही बनकर रहेगी। पेट भरेगी अपनी मेहनत से अपना भी सबका भी।

कब चुपके से भगवान बाबू आकर बैठ गए उसके पास, उसे पता ही न चला।

“कैसी हो बिन्दु मौसी? मोहना कहाँ है? खाना खाया?” भगवान बाबू ने तीन प्रश्न एक साथ पूछ डाले।

“नहीं” मौसी ने जैसे रोजमर्रा की तरह किसी को उत्तर दिया। फिर वह चौंकी। किसने पूछा था यह सवाल इतने प्यार से? भगवान बाबू को देख मौसी और उदास हो गई।

“पकाओगी नहीं कुछ? अभी भी गुस्सा हो क्या?”

“गुस्सा कैसन? के है हमर जिकरा पर गुस्सा करब? कोई नाय है हमर, कोई नाय है।” कहकर मौसी फफक पड़ी।

“घर चला बिन्दु मौसी। वह भी तोहरा ही घर है। हमर दोनों के घर। कोई नाय आपन। ना भाय, ना भाभी, ना बेटा, ना दामाद, ना मोहना, ना बिन्दु। चलो जी! छोड़ो इन सबका ख्याल अब। हम ही तोर भाई-भाभी, बेटा-दामाद, और तेरा मोहना। तू हमर भाई-भतीजा, बेटा-बहू, माय-बाप, सभै कुछ है। औरत-मरद का रिश्ता ही पक्का होता है जी। दूसरा कोई रिश्ता नाय है। चला आपन घर। हमर पैसा लुटाय गेल। तोर पैसा सिराय (खत्म) गेल। यह ‘सार’ (साला) पैसा ही सब फसाद के जड़ हय। चल अब हम दोनों जन एके साथ रहब दोनों मिलके खटब (काम करेंगे)।”

थोड़ी देर चुप रह कर, भगवान बाबू, फिर बोले “चलो उठो जी अब! बड़ी जोर भूख लगल है। कुछ पकाइए।”

मौसी सोच रही थी, पता नहीं उसे माधो के बारे में कुछ मालूम भी है या नहीं। उसने बात नहीं छोड़ी, पर वह चाह रही थी कि वह उसे सब बताए।

मौसी उठी। मुंडी मरोड़कर मुर्गी उबालने रख दी। पंख नोच-नोचकर बोटी-बोटी काटी। मसाला पीसने लगी। भगवान बाबू खटिया पर बैठकर उसे देखते रहे। माधो के बारे में सब बातें बिन्दु ने उन्हें बता दी थी।

“बड़ा बुरा किया जी उसके साथ सबने। मोहना ऐसा करेगा, बिसवास ही नहीं हुआ। पर जब ‘लरिका’ (लड़का) जवान हो जात है, तो बाप बन जात है जी।” भगवान बाबू बोल रहे थे।

मौसी भगोना चूल्हे पर चढ़ाकर मसाला भूँजने लगी।

“मुझे माधो से कोई मलाल ना हय। आखिर हम भी तो ऐन बख्त पर तोरा छोड़ देयल रहे। जो आप किये, कोई भी औरत ऐसने करती। मैं भी ऐसने करती। गलती तो हमरी थी ना!” कहकर भगवान बाबू चुप हो गए।

मौसी भगोने में मुर्गी सीझने के लिए पानी डालकर बगल की दुकान से ‘चखना’ ले आई। भगवान बाबू को कोलियरी का क्वार्टर याद आ गया। वह

मुस्करा दिए। रोज साँझ को ऐसे ही दोनों अँगना में चूल्हे के पास बैठते थे। मौसी खाना बनाती थी। भगवान बाबू कोलियरी की या यूनिशन की बातें चलाते और फिर शुरू कर देते अपने पुराने किस्से सुनाना। फिर चखने के साथ दोनों दारू पीते और देर रात गए खाना खाते।

“ले खा !” मौसी ने खाना परसा।

तुम नहीं खाओगी? हम पराए हो गए क्या? हम वहीं हैं जी। अब गलती माफ करो।” भगवान बाबू ने हाथ पकड़कर उसे साथ खाने के लिए बिठाते हुए कहा। दोनों ने साथ-साथ खाना खाया।

मौसी सोच रही थी। उस मुर्गी से जिसे उसने अभी-अभी काटकर रौंथा था, कहाँ फरक है वह? कोई-न-कोई मरद हर औरत की मुंडी मुर्गी की तरह ही मरोड़ने को तैयार रहता है। पंख नोचता है कि उड़े नहीं, बोटी-बोटी काटता है पकाता है कि खा सके, पचा सके। अपने से कुछ भी तो नहीं है औरत। वह तो बस दूसरों के खाने के लिए ही बनी है...! बस एक पकवान है वह। कटोरी में परसा शोरबा है जिसके आगे कटोरा परसा जाता है वह उसे चटखारे लेकर चखता है पीता है। वह तो मात्र चखना है, जो दारू के नशे को और तेज़ करता है स्वाद को बढ़ाता है। वह स्वयं कुछ नहीं है शायद। मरद के हाथों की कठपुतली है। चाहे सलीम नचाये, चाहे उसका बाप मौलवी, चाहे भगवान बाबू, चाहे मोहना। उसे माधो चुनने का, उसे अपने मन माफिक अपना साथी चुनने का, जो अपने सुख-दुःख में मददगार बन सके अधिकार नहीं है। सभी को उससे नफरत करने का हक जरूर प्राप्त है। पूरी दुनिया को उस पर दया करने की भी छूट है, लेकिन उसे बराबर मानने का दस्तूर नहीं है। उसे याद आया गाँव का वह कुत्ता जो पड़ोसिन की कुतिया के लिए काँऊ-काँऊ करता, उसे सरे आम घसीटता फिर रहा था। उसे याद आए बाड़े के वे साँड़, वे भैंसे जो दिन दिहाड़े गाय या भैंस को दौड़ाते फिरते हैं! ‘कहाँ फरक है मरद जात और इन जानवरों में।’ मौसी ने मन-ही-मन अपने सवालियों का जवाब दिया।

उसने चुपचाप खाना खाया और भगवान बाबू को खिलाया।

भगवान बाबू को सोया छोड़ कर, अगले दिन भोरे-भोरे मौसी बस पकड़कर शहर में काम की तलाश करने सड़क पर आ गई। वह तय न कर पा रही थी कि वह भगवान बाबू के घर में जाकर बैठी रहे, जैसे गाय बाड़े में बैठ जाती है या खुदसर होकर मजूरी करे! खटे-खाए!

न रहेगा मोहना तो न सही। वह बच्चे के बदले बिलार पोस लेगी। कुत्ता पोस लेगी। अगर कोई खतरा होगा, तो वह मौके पर भौंकेगा तो सही। मोहना की तरह काटेगा तो नहीं। नहीं तो सुग्गा पाल लेगी बोलने बतियाये खातिर। किसी बुढ़ऊ की टर्-टर् तो नहीं सुननी पड़ेगी उसे। सुग्गा उससे बार-बार सवाल ही तो पूछेगा! भले एक ही सवाल पूछेगा पन पूछेगा तो सही। बोल-बोल कर सूते से जगाएगा भी तो! 'वह भले एकेई बात घुर-घुर के दोहराएगा, आखिर चहचहाएगा तो हमरेई घर अँगना न। अपने मन की मैं खुदेई मालिक होऊंगी। मालिक हँ अपनी देह की मालिक भी।'।

सोच थमती ही न थी। बाइस्कोप की तस्वीरों का रूप ले रहे थे विचार। जो नये संकल्पों को जन्म दे रहे थे। नहीं बनना है उसे अब किसी बुढ़ऊ की जिन्दगी का सहारा। ना ही उसे किसी बच्चे के भविष्य का सम्बल बनना है। खुद वह ही गढ़ेगी अपना भविष्य। औरत जात का भविष्य। वह तो जन्मजात माँ है न। ममता उसकी रग-रग में भरी है। वह आज तक सभी को पोसती आ रही है। अब वह उन्हें पोसेगी, जिन्हें उसकी जरूरत है।

“नहीं लगाएगी वह मरद की मर्दानगी से होड़। वह अपनी पहचान खुद बनाएगी! मरदों का क्या विश्वास? सलीम डर गया भाग गया, मौलवी जबरन गले मढ़ दिया गया वह भी मर गया! भगवान बाबू की बात और थी उनसे तो खैर सौदा किया था उसने। उनके साथ उसका अपना स्वार्थ भी था, इसलिए दोनों मिले थे। भगवान बाबू का स्वार्थ सध गया, तो वह उसे अकेला छोड़कर चल दिया था। आज उसका सब कुछ लुट-पुट गया है। वह अकेला रह गया है। किसी ने उसे अपना नहीं माना, ना भाई ने, ना भाभी ने, ना बेटी-दामाद ने, तो वह उसके पास लौट आया है।”

सवाल-दर-सवाल हहराते चले आ रहे थे उसके मन के समुद्र में। वह

फुसफुसाई 'पन माधो क्यों चल गेल? काहे नहीं लौटा वह मोर ठिन (मेरे पास)? एको बार तो आता हमर से पूछे खातिर? हमर गलती बताता! हमनी मान लेत आपन गलती। कि जाने ऊ हमर के कभियो आपन मानले कि नाय जे ऐसन चुपके से चल देल हमर जिन्दगी से बाहर? उ पूछतै तो कि हम केस में पुलिस के सामने काहे नहीं धरा मोहना, भाईवन या बिरादरी वालों का नाम? ऊ त कुछो पूछले ही नाय! ऊ हमर के मार लेता, हमनी के धिक्कारता, पर ऐसन नाय जाता, जैसन हमनी से कोई वास्ता ही नखे।' पता नहीं वह कितनी देर तक ऐसे ही सोचती रहती अगर भगवान बाबू की आवाज उसे टोक कर न चौंकाती

“उतरो जी, बस से उतरो देखो हम पहलेई पहुँच गए हैं, आपको लिवाय खातिर।” भगवान बाबू की आवाज़ ने उसे चौंकाया। बस कब की, हजारीबाग पहुँचकर खड़ी थी। सवारियाँ उतर कर जा चुकी थीं। वह अकेली बस में बैठी सोच रही थी।

“चल बिन्दु मौसी, चल। तू अपनी ही शर्त पर रह। जैसन तू कहब हम करब। ना जायके चाहे है हमर गाँव, तो ना जा। जहाँ तू रहब हमहु होन्हें (वहीं) रहब।” भगवान बाबू बोले।

मौसी एक पल के लिए सोच में पड़ गई। फिर झटके से एक फैसला सुनाती-सी बोली

“तो चल, तू और हम दोनों मजूरी करके, खटके खायब! न तू ठाकुर न हम मुंडा। न तू बड़ जात न हम छोट जात। दोनों मजूर। हम तोर कमाई पर न रहब। हम अपनेई कमायब। मंजूर हय तो बोला। हम न तोर गाँव में रहब, ना आपन गाँव में। दोनों जन मिल के काम करब कमायब होनेई रहब।”

छन भर को भगवान बाबू हिचके। जन्मजात संस्कारों को तोड़ने से कुछ डरे, कुछ सहमे!

“टाटा कम्पनी की कोलियरी में भी तो हमनी शुरू में झोड़ा ही ढोते थे न! तब केन चल गेले हमर ठकुरैती?” उन्होंने मन ही मन अपने से सवाल किया। ‘अब गाँव के खेतों पर क्या गुमान?’ वे अपने से ही सवाल पूछते और

कुछ हकलाते हुए बोले

“चल तोर बात ही ठीक! ला, दे गमछा! हम हूँ ईटा ढोयब! कल से हम लकड़ी काटब, तू बेचा। हम खेत में हल नादबे, तू रोपा। हम आज से मुंडा बन गेल। हमरा अब कौनो घर नाय है, कौनो खेत नाय है, ना ही कोनो गाँव है, जेने पाबे होन्हें खटब। हमर कोऊ जाति न है। हम दोनों एक जात हैं। बस मजूरा हैं हम दोनों जन।”

मौसी ने बड़े विश्वास से उसे देखा और मनुहार से कहा “एक औरो जात है हमनी के! की भुलाय गेल है तू? तू मरद हम औरत! चल जनी-मरद बन के खटब। मजूरा बनके कमायब...! हम माय बनके तोरा पोसब तै बाप बनके हमर के रख्या कर देखभाल कर! चल आइज से तू ही हमर मोहना तू ही हमर माधो तू ही हमर सलीम।”

और दोनों जन चौक पर अपना श्रम बेचने के लिए मजदूरों की कतार में खड़े हो गए। दोनों के सिर पर टोकरी थी। टोकरी जिसकी कोई जात नहीं होती!

